हमारे

अमर नायक

[उत्तरराम ी, मृच्छकटिक,
शकुंत[illegible], रघुवंश और सत्यहरिश्चंद्र
नामक प्रसिद्ध ग्रंथों के नायकों
का रोचक चरित्र-चित्रण]

लेखक

यण टंडन, एम० ए०, सा० र०
सर्च स्कालर, लखनऊ विश्वविद्यालय)

हमारे अमर नायक

[उत्तररामचरित, नागानंद, कादंबरी, मृच्छकटिक, शकुंतला, रघुवंश और सत्यहरिश्चंद्र नामक प्रसिद्ध ग्रंथों के नायकों का रोचक चरित्र-चित्रण]

लेखक

प्रेमनारायण टंडन, एम० ए०, सा० र०

(रिसर्च स्कालर, लखनऊ विश्वविद्यालय)

प्रथम संस्करण] अप्रैल १९४६ [बारह आना

प्रकाशक—
विद्यामंदिर, रानीकटरा,
लखनऊ.

लेखनकाल : १९३७
प्रकाशनकाल : १९४६
प्रथम संस्करण : १०००
मूल्य : बारह आना

मुद्रक —
शुक्ला प्रेस, नज़ीर
लखनऊ.

परिचय

प्रस्तुत पुस्तक लिखी तो गई थी सन् १९३७ में; पर प्रकाशित हो रही है नौ वर्ष बाद।

इसमें सात प्रसिद्ध ग्रन्थों—६ संस्कृत और एक हिंदी के नायकों का चरित्र-चित्रण उनके अनुवादों के आधार पर इस ढङ्ग से किया गया है कि कथानक के सभी रोचक अंशों का सार उसमें आ जाय। हिंदी में इस ढङ्ग की दो-एक पुस्तकें और भी निकली हैं; परन्तु केवल ग्रन्थ-सार सामने रखने का उद्देश्य अपनाने के कारण उनके लेखक नायक के चरित्र की उस विशिष्टता का स्पष्ट परिचय पाठकों को नहीं दे सके हैं जिससे प्रभावित होकर रचयिता ग्रन्थ-रचना में प्रवृत्त हुआ था। अस्तु।

पुस्तक की भाषा बहुत सरल और शैली-सुबोध है। अतः आशा है कि सभी श्रेणी के पाठकों का इससे पर्याप्त मनोरञ्जन होगा

रानीकटरा
लखनऊ

—प्रेमनारायण टंडन

कथा - क्रम

हमारे अमर नायक

राम

[उत्तर रामचरित नाटक]

(१)

राजा दशरथ के पुत्रों के जन्म के पहले एक कन्या उत्पन्न हुई थी। उसका विवाह श्रृंगी ऋषि के साथ हुआ था। एक बार उन्होंने महा-यज्ञ करना आरम्भ किया। उस समय अयोध्या में महाराज रामचन्द्र राज कर रहे थे और महारानी सीता गर्भवती थीं। इसीसे यज्ञ का निमंत्रण आने पर तीनों विधवा महारानियाँ गुरु वशिष्ठ के साथ वहाँ चली गईं; राम और सीता को अयोध्या में ही रहना पड़ा। चलते समय गुरुवर वशिष्ठ जी ने राजा रामचन्द्र को यह समझा दिया कि सब प्रकार से प्रजा को संतुष्ठ रखना ही राजा का धर्म है। महाराज रामचन्द्र जी ने उन्हें वचन दिया कि आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। गुरुवर वशिष्ठजी को उन पर पूरा विश्वास तो था; पर बाद में यह सोचकर कि राम को अकेले राज करने का पहला ही अवसर मिला है, उन्होंने

यज्ञस्थल पर पहुँचकर दूत के द्वारा राम के पास फिर यही सन्देश भेज दिया कि देखो, प्रजा को सब तरह से प्रसन्न रखना और वह जो चाहे वही करना।

जब दूत गुरू का सन्देश लेकर राम के पास पहुँचा तब राम ने सब के सामने यह प्रतिज्ञा की कि चाहे स्त्री, धन-धाम मुझे सब कुछ छोड़ना पड़े परन्तु मैं अपनी प्रजा को सब प्रकार से संतुष्ट रखूँगा।

एक दिन महाराज रामचन्द्र सीताजी को चित्र दिखा रहे थे। वे चित्र उनके पूर्व जीवन के थे। राम का जन्म, उनका बाल्यकाल, विश्वामित्र के साथ धनुषयज्ञ में जाना, उनका विवाह, अयोध्या का सुख, वनवास के समय के दृश्य, पंचवटी की बातें, सीताहरण, जटायु की मृत्यु, सुग्रीव की मित्रता, लङ्कादहन, राम रावण युद्ध आदि सभी बातें चित्रों द्वारा दिखलाई गई थीं। सीताजी उन्हें बड़ी उत्सुकता से देख रही थीं। सहसा उनकी दृष्टि पंचवटी और दण्डकवन के चित्रों पर रुक गई। वनवास का बहुत सा समय यहीं बिताया गया था। इस लिए चित्र देखते ही सभी दृश्य एक बार उनकी आँखों के सामने नाचने लगे। उन्होंने बड़ी उत्सुकता से राजा रामचन्द्रजी से कहा—आर्य पुत्र ! इन वनों की शोभा देखकर तो यही इच्छा होती है कि एक बार फिर वहीं चल कर रहा जाय और परम पावन गंगा नदी के निर्मल और शीतल जल में विहार किया जाय।

सीताजी उस समय गर्भवती थीं। गर्भवती स्त्री की इच्छाएँ पूरी करने से संतान हँसमुख और सुखी होती है। यज्ञ को जाते समय राम की माताएँ भी उन्हें यही आज्ञा दे गई थीं कि सीताजी की सब इच्छाएँ पूरी करना। इसलिए जब सीताजी ने पञ्चवटी और दण्डकवन में जाकर कुछ दिन बिताने की इच्छा बताई तब महाराज राम ने उनकी यह अभिलाषा पूरी करने के लिए लक्ष्मण को शीघ्र ही रथ तैयार करने की आज्ञा दी।

चित्रशाला में घूम फिर कर चित्र देखने के कारण थोड़ी देर बाद सीता जी थक-सी गईं। उन्होंने महाराज से विश्राम करने की इच्छा प्रकट की। राम ने वहीं उनके सोने का प्रबन्ध करा दिया और सीताजी से विश्राम करने को कहा! सीताजी राम की बाँह का तकिया लगाकर लेटीं और थकी होने के कारण लेटते ही सो गईं।

दुर्मुख नाम का एक गुप्तचर था। महाराज राम ने अपनी प्रजा के विचार जानने के लिए उसे भेजा था। उसे उन्होंने आज्ञा दी थी कि वह प्रजा से मिलता रहे; परन्तु अपना भेद न खोले और इस बात का पता लगा कर लावे कि महाराज के राज्य के सम्बन्ध में प्रजा के क्या विचार हैं। यह दूत महारानी के सो जाने पर उनके पास आया और बोला—महाराज, आपके राज्य में प्रजा सब भाँति सुखी है।

महाराज रामचन्द्रजी को इतने से ही संतोष न हुआ। उन्होंने पूछा—हमारे राज्य में कोई हमारी निन्दा तो नहीं करता? कोई ऐसा तो नहीं है जो हमारे किसी काम से असंतुष्ट हो?

महाराज रामचन्द्रजी के मुँह से इतना सुनकर दुर्मुख सोच में पड़ गया। उसने अपना सिर झुका लिया। महाराज ने जब उसकी यह दशा देखी तो उनकी उत्सुकता और भी बढ़ गई। उन्होंने गुप्तचर से कहा—तुम डरो मत; जो कोई बात तुमने सुनी हो साफ-साफ कह दो। विश्वास रखो, हम प्रजा की इच्छा पूरी करने के लिए—उसे सन्तुष्ट रखने के लिए—अपना सर्वस्व निछावर कर देंगे क्योंकि गुरुवर की यही आज्ञा है।

तब दुर्मुख ने बड़े साहस के साथ कहा—महाराज, कुछ लोग महारानी के प्रति शंका रखते हैं। उनका कहना है कि इतने दिन रावण के यहाँ रहने पर भी आपने महारानी को ग्रहण कर लिया है।

इतना सुनकर महाराज रामचन्द्र पर मानों वज्र गिर पड़ा। कुछ देर तक वे चुपचाप सर झुकाए बैठे रहे। वे सोचने लगे कि जिस प्रजा

को सन्तुष्ट रखने की गुरुवर वशिष्ठजी मुझे आज्ञा दे गए हैं ; और जिसके लिए मैं स्वयं भी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, उसकी शंकाओं का समाधान करने के लिए महारानी सीता को त्यागना आवश्यक ही नहीं, बल्कि ऐसा करना मेरा कर्तव्य भी है। लेकिन चिन्ता की बात यह है कि महारानी सीताजी गर्भवती हैं और ऐसी अवस्था में सीताजी को त्यागना उचित है या अनुचित। कुछ देर तक वे इन्हीं बातों को सोचते रहे। अंत में उन्होंने जन-मत की रक्षा के लिए प्राणों से भी अधिक प्यारी और गर्भवती सुकुमार सीताजी को त्यागना ही अपना कर्त्तव्य समझा। उन्होंने दुर्मुख द्वारा अपना यही निश्चय लक्ष्मण को कहला दिया कि सीताजी को ले जाकर वन के किसी आश्रम में छोड़ आओ। जब हमारी प्रजा उन्हें हमारे पास नहीं रहने देना चाहती, तब हम उन्हें पास रख ही नहीं सकते। इसलिए तुम शीघ्र ही रथ तैयार करके महा-रानी सीता को वन में भेज आओ।

दुर्मुख इतना सुनते ही हतबुद्धि-सा उनकी ओर ताकने लगा, फिर उसने घबड़ाकर कहा—महाराज! आप यह क्या कर रहे हैं? लेकिन रामचन्द्रजी ने उत्तर दिया कि जिस इक्ष्वाकुवंश की प्रतिष्ठा प्रजा अतीत-काल से कर रही है, मैं उसकी निंदा नहीं होने दूँगा। यह सुनकर दुर्मुख की आँखों में आँसू छलक आए और वह सजल नेत्रों से सोती हुई सीता की ओर देखता हुआ चला गया।

रामचन्द्रजी को सीता से बड़ा प्रेम था। दुर्मुख के जाते ही अपनी पत्नी की ओर देखकर और उसके भविष्य की चिंता करके वे बड़े दुखी हुए। वे कहने लगे कि बचपन से ही जिसका लालन-पालन बड़े दुलार से हुआ है और जो मुझे देखे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकती, उसके साथ मैं कैसा अन्याय कर रहा हूँ। हाय! मैं कैसा पापी हूँ।

महाराज रामचन्द्रजी ने सीताजी के पैरों पर अपना मस्तक रख

दिया और करुण स्वर में कहने लगे—हा ! इस कृतघ्न के मस्तक से तुम्हारे चरणकमलों का यह अंतिम स्पर्श है। देवी, इस कृतघ्न को क्षमा करना। इतना कहते-कहते जैसे उनका हृदय रोने लगा; उनकी आँखों मे आँसू बहने लगे। मन-ही-मन उन्होंने अनेक बार सीताजी से इसके लिए क्षमा माँगी।

इसी समय बाहर कुछ कोलाहल सुनाई दिया। राम उसे सुनकर बाहर चले गए। इधर सीताजी की नींद खुल गई। महाराज को पास न देखकर वे सोचने लगीं कि आर्य-पुत्र मुझे अकेला छोड़कर चले गए। अच्छी बात है, आज मैं उनकी इस निष्ठुरता के कारण मान करूँगी।

तभी दुर्मुख ने आकर निवेदन किया कि महारानीजी, रथ तैयार है। रथ आया तो था रामचन्द्रजी की आज्ञा से सीताजी को वन में छोड़ आने के लिए, लेकिन सीताजी ने समझा कि लक्ष्मण इसमें बैठाकर मुझे पंचवटी और दंडक वनों की सैर कराएँगे। इसलिए वे बड़ी प्रसन्नता से अपने गुरुजनों को प्रणाम करके रथ पर बैठ गई।

(२)

सीताजी के वनवास को बारह वर्ष हो गये।

एक दिन एक ब्राह्मण का पुत्र मर गया। सबने कहा कि राजा के अपराध के कारण ही पिता के जीवित रहते किसी का पुत्र मरता है। ब्राह्मण ने जाकर महाराज रामचन्द्रजी से प्रार्थना की कि महाराज आपके राज्य में कहीं पर कुछ अधर्म हो रहा है। इसी से ब्राह्मण के जीवित रहते ही उसका पुत्र मर गया है। आप कृपा करके उसे दूर करें।

महाराज रामचन्द्रजी यह सुनकर बड़े चिन्तित हुए। वे सोचने लगे कि इस ब्राह्मण को प्रसन्न करने के लिए क्या करना चाहिए।

इसी समय उन्हें पता लगा कि एक शूद्र दण्डकवन में तपस्या कर रहा है। शूद्रों को उस समय तक तपस्या करने का अधिकार नहीं था इसी कारण यह अनर्थ हुआ है कि ब्राह्मण के जीवित रहते ही उसका पुत्र मृत्यु का ग्रास बन गया। महाराज राम ने यह जानकर उसी समय उसे मारने की प्रतिज्ञा की और पुष्पक विमान पर बैठकर उसी ओर चले जहाँ वह पापी शूद्र तपस्या कर रहा था। बहुत शीघ्र ही वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस शूद्र का सर काट डाला।

यह वही वन था जहाँ पिता के कहने पर राम-राज्य छोड़कर सीता और लक्ष्मण के साथ बहुत दिनों तक रहे थे। उस समय यह स्थान सीता को बहुत प्रिय लगा था। यहाँ आकर और इस पूर्व परिचित स्थान को, जो सीता को बहुत प्रिय था, देखकर उन्हें स्वभावतः अपनी प्रिय पत्नी महारानी सीता की याद आ गई। वे सोचने लगे कि हाय, जिस सीता ने मेरे साथ दुख के चौदह वर्ष हँसते-हँसते काट दिये उसी सीता को हमने बिना किसी अपराध के घर से निकाल दिया और कभी उसकी सुधि न ली। सूखा घाव फिर हरा हो आया। उनके नेत्रों मे जल भर आया। गर्भवती सीता के कष्ट और दुख की बात सोचते-सोचते उन्होंने धीरज खो दिया ; वे रोने लगे।

इसी वन के पास ही पंचवटी नाम का एक स्थान था। वनवास के दिनों में राम सीता के साथ वहाँ भी बहुत समय तक रहे थे। दण्डक वन से घूमते-घूमते राम उसी वन में जा पहुँचे। भाग्य से सीता भी वहीं थी। उन्हें अपने प्रिय पति के वियोग का बहुत ही अधिक दुख था। बेचारी सूखकर काँटा हो रही थीं। घूमते-घूमते सीताजी ने अपनी प्रिय सखी वासंती का स्वर सुना। वासंती कह रही थी—हाय ! सीता के प्यारे हाथी के बच्चे को एक मस्त हाथी मारना चाहता है।

सीताजी इतना सुनते ही व्याकुल हो गईं। उन्होंने हाथी के उस बच्चे को बड़े प्यार से पाला था। उसके कष्ट में पड़ने की बात सुनते

ी वे इस बात को भूल गईं कि आज उनकी सहायता करनेवाला कोई नहीं है और जल्दी में पहले दिनों की तरह उनके मुँह से निकल पड़ा—आर्य पुत्र ! जल्दी आकर मेरे इस बच्चे को बचाओ। परन्तु शीघ्र ही उन्हें अपनी भूल मालूम हो गई और 'हा आर्य पुत्र' कहकर ी वे मूर्छित होकर गिर पड़ीं। उनकी सखी तमसा ने आकर उन्हें सम्हाला और बड़े प्यार से कहा कि तुम्हारे प्रिय पति राम भी पञ्चवटी में आये हैं। सीताजी के शरीर में इतना सुनते ही जैसे प्राण आ गए। उन्होंने आँख उठाकर देखा तो कुछ दूर पर उन्हें राम आते दिखाई दिये। सीता के वियोग के कारण उनका शरीर क्षीण और दुर्बल हो रहा था। उनकी ऐसी दशा देखकर सीता को बड़ा दुख हुआ और ा "हा ! आर्य पुत्र तो पहचाने भी नहीं जाते" कहकर तमसा के गले से लिपट गईं और फिर बेहोश हो गईं।

परन्तु राम ने सीता और उनकी सखी को नहीं देखा। देखते भी कैसे ? वे तो जिन स्थानों में पहले बहुत दिन तक सीता के साथ-साथ रहे ा, उन्हीं को देखकर अब उनकी स्मृति जाग्रत हो उठी और वे भी 'हा विदेह नन्दिनी ! हा दण्डक वन की मेरी प्यारी सहचरी सीता !" कहते-कहते मूर्छित होकर गिर पड़े।

सीता की प्यारी सखी तमसा को महाराज राम के पञ्चवटी में आने का समाचार मालूम हो गया था। इसीलिए वे भगवती भागीरथी के पास गईं और उनसे प्रार्थना की कि अपनी शक्ति से आप सीता को अदृश्य कर दें। ठीक समय देखकर अब उसने सीता को समझाया कि भगवती के वर से आज तुम्हें कोई देख ही नहीं सकता। इस समय महाराज राम मूर्छित पड़े हैं। इसलिए तुम उनके पास जाकर अपने हाथ से उन्हें सम्हालो। सखी की बात सुनकर सीता ने राम के पास बैठकर उनके शरीर पर अपना कोमल हाथ फेरा। उनके स्पर्श से राम को बड़ा सुख मिला। वे सीता के स्पर्श को भली-भाँति पहचानते थे।

इसलिए उन्होंने बड़े आश्चर्य से कहा—मेरी विरह-व्यथा के ताप को दूर करनेवाला सञ्जीवनी के समान यह स्पर्श तो स्नेह-भरी सीता का जान पड़ता है।

सीता ने इतना सुनते ही घबड़ाकर अपना हाथ छुड़ा लिया। राम अब फिर व्याकुल होकर पुकारने लगे—हा प्यारी जानकी! तुम कहाँ हो?

सीता की दूसरी सखी वासंती ने आकर राम से इसी समय कहा—जिस हाथी के बच्चे को मेरी प्यारी सीता ने पाला था, वह इतना बलवान निकला कि महाराज, उसने एक जङ्गली हाथी को मारकर भगा दिया।

यह सुनकर सीता को अपने दोनों पुत्रों की याद आ गई। इन पुत्रों का जन्म भी बारह वर्ष पहले हुआ था। जन्म के पश्चात् वाल्मीकि मुनि ने उन्हें राजकुमारों के योग्य शिक्षा देने के लिये अपने आश्रम में रख लिया। सीताजी इन बारह वर्षों से उन्हें नहीं देख सकी थीं। ऊपर जिस हाथी के बच्चे की बात हुई है, उसे भी सीताजी ने अपने पुत्रों के जन्म के समय ही पाला था। आज जब उन्होंने हाथी के बच्चे के बड़े होने की बात सुनी तो उन्हें ध्यान हो आया कि उनके पुत्र भी इतने ही बड़े हो गये होंगे।

पुत्रों की याद आने पर अतिशय स्नेह के कारण सीताजी के स्तनों से दूध बहने लगा। परन्तु उनकी यह दशा राम और वासंती दोनों पर न प्रकट हुई। कारण यह था कि वर के प्रभाव से सीता और तमसा दोनों ही अदृश्य थीं।

बासन्ती, सीता-निर्वासन के कारण राम से कुछ क्षुब्ध सी थी। उसने पूछा—महाराज आप इतने कठोर कैसे होगये? "तू हृदय का हृदय है, मेरे प्राणों की प्राण है, जीवन की ज्योति है।"—आदि मीठी-मीठी बाते बनाकर जिस भोली भाली जानकी को भरमाया था हा, उसी को कैसे········।

राम ने रोते-रोते उत्तर दिया—कुछ लोगों को विश्वास न था।

वासन्ती ने कहा—कठोर हृदय! क्या यश आपको इतना प्रिय था! इसमें आप का यश हुआ या अपयश? हाय! कभी आपने यह भी सोचा कि उस कोमल कलेवरा पर अकेले निर्जन वन में क्या बीती होगी?

दुखी राम के लिए इतना बहुत था। वे अपने को रोक न सके और "प्यारी जानकी तुम कहाँ हो?" कहकर रो पड़े। वासन्ती का भी जी भर आया। परन्तु, राम अचेत हो गये। वासन्ती ने घबड़ाकर कहा—प्यारी सखी सीता! अपने प्राणनाथ की रक्षा करो।

सीता ने पूर्ववत् अपना कोमल हाथ राम के शरीर पर फेरा। राम को इस स्पर्श से बड़ा सुख मिला। वे बोले—सखी वासन्ती! मेरे भाग्य का फिर उदय हुआ है। जानकी मुझे मिल गई हैं।

वासन्ती ने एक बार चारों ओर देखा, पर कुछ दिखाई न दिया तब उसने दुखी होकर कहा—देव! प्यारी सखी के दुख में दुखी प्राणों को इस प्रकार क्यों जला रहे हैं?

राम ने सीता का हाथ पकड़ लिया और कहा—सखी, यह प्रलाप नहीं है, इस स्पर्श से मैं चिरपरिचित हूँ। देखो यह सीता का कोमल कर है।

वासन्ती—हाय! इन्हें तो उन्माद हो गया!

इसी समय घबड़ाकर सीता ने अपना हाथ छुड़ा लिया।

राम—अरे सीता का हाथ तो छूट गया। हाय! हाय! प्यारी तुम बड़ी निष्ठुर हो।

वासन्ती—देव! धैर्य धरिये। भला प्यारी सखी यहाँ कहाँ?

राम—सखी वासन्ती! मुझे अयोध्या जाने दो। वहाँ यज्ञ के लिए सीता की जो स्वर्ण मूर्ति बनी है उसी को देखकर मैं अपनी आँखे ठंडी करूँगा।

सीता ने प्रसन्न होकर कहा—अहा, आज मेरे हृदय का काँटा निकल गया। वह स्त्री धन्य है जिसका स्वामी इतना आदर करता हो।

तमसा ने सीता को प्यार से गले लगाकर कहा—तू तो अपनी ही प्रशंसा कर रही है।

सीता ने लज्जा से अपना सिर झुका लिया।

(३)

शृंगीऋषि के यहाँ महाराज दशरथ की रानियों और गुरुवर वशिष्ठ तथा अरुंधती ने सीता-त्याग की बात सुनी। इससे उन्हें इतना दुख हुआ कि उन्होंने सीता से शून्य अयोध्या को लौटना ही स्वीकार न किया। अतः वशिष्ठजी उन्हें वाल्मीकि मुनि के आश्रम में ले गये। सीताजी के पिता जनकजी भी उन दिनों मुनिवर से मिलने आये हुए थे। सभी सीता के दुख से दुखी थे। महारानी कौशल्या तो पहिचानी ही न जाती थी। विदेहराज के आसन में होने की बात जानकर लज्जा और दुख के कारण उनसे आगे बढ़ा ही न गया। उधर जनक उनके आगमन की सूचना पाकर उनसे मिलने के लिये चले।

महारानी कौशल्या सोचने लगीं—हाय प्यारी बहू की यह दशा हुई ! मैं अब मिथिलेश को कैसे मुँह दिखाऊँ। उनके पास जाने के बिचार से ही मेरा शोक उमड़ रहा है। हृदय टूक-टूक हो रहा है।

इतने में जनक पास आ गये। उन्होंने भगवती अरुंधती का अभिवादन किया। देवी ने उन्हें आशीर्वाद दिया। फिर महारानी से कुछ न कहकर उन्होंने कञ्चुकी से पूछा—प्रजापालक महाराज की माता तो कुशल से हैं।

कञ्चुकी ने उत्तर दिया—राजर्षि ! महारानी को इस बात का इतना दुख है कि उन्होंने पुत्र के मुखचन्द्र का दर्शन ही त्याग दिया है। यह हमारा अभाग्य ही है जो ऐसा अनर्थ हो गया।

परन्तु कौशल्या मिथिलेश का यह व्यंग्य सहन न कर सकी। उन्हें मानसिक वेदना हुई। और वे मूर्छित हो गईं। जनक इससे दुखित

और लज्जित हुए। उन्होंने अपने कमण्डल के जल के छींटे देकर महारानी को चैतन्य किया।

इतने में कुछ बालक खेलते हुए वहाँ आ गये। उनमें एक बालक श्याम वर्ण का बहुत सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट था। वह मृगछाला पहने तूणीर कसे और धनुष लिये था। महारानी कौशल्या ने बड़े प्यार से उसे पास बुलाकर गोद में ले लिया। राजर्षि ने उसे देखकर कहा— यह बालक तो सीता और राम पर पड़ा है।

कौशल्या ने उससे माता-पिता का परिचय पूछा। बालक ने उत्तर दिया—मैं भगवान वाल्मीकि का पुत्र हूँ। मेरे एक ज्येष्ठ भाई है। उनका नाम आर्यकुश है। भगवान वाल्मीकि ने रामायण की कथा को लेकर एक नाटक लिखा है। उसे उन्होंने भगवान भारत के पास भेजा है। आर्यकुश उन्हीं की रक्षा के लिए गये हैं।

राजर्षि ने पूछा—रामायण की कथा कहाँ तक हुई है।

बालक ने उत्तर दिया—अपवाद के डर से महाराज राम ने सीता को त्याग दिया और प्रसव-वेदना से व्याकुल सीता को लक्ष्मण बन में छोड़ आये।

यह सुनकर जनक और कौशल्या का दुख फिर उमड़ आया और वे रो पड़े।

(४)

इसी समय सुनाई पड़ा—यह तीनो लोक के स्वामी महाराज रामचन्द्र का अश्व है। वीरवर बालक दर्पभरी वाणी न सह सका। आगे बढ़कर उसने घोड़े को पकड़ लिया। अश्व के रक्षकों ने लव को ललकार, परन्तु वीर बालक ने अकेले ही सभी को मार भगाया। तब बहुत-से सामंत सेना लेकर उस बालक पर आक्रमण करने चले। इस सेना का सेनापती लक्ष्मण का पुत्र चन्द्रकेतु था। वृद्ध मंत्री सुमंत

उसके साथ थे, उन्होंने आगे बढ़कर कहा—यही वीर बालक है। इसी का नाम लव है।

कुमार चन्द्रकेतु ने एक बार उस बालक की ओर देखा, फिर अपने सामंतों को धिक्कारते हुए कहा—तुम्हें एक बालक पर आक्रमण करते लज्जा नहीं आती? धिक्कार है तुम्हें।

वीर लव ने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। उसने सम्मोहनास्त्र का प्रयोग करके सारी सेना को बेहोश कर दिया। यह देखकर चन्द्रकेतु और सुमंत्र दोनों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे बोले—ये अस्त्र तो महाराज के अधिकार में हैं, इस बालक को कैसे मिले?

परन्तु इस विचारों के लिए समय कहाँ था। लव उन्हें युद्ध के लिये ललकार रहा था। कुमार भी सामने आ गया। पर उसने लव को पैदल देखकर रथ से उतरना चाहा। लव ने उसे रोककर कहा—कुमार! आप रथ पर ही भले लगते हैं।

चन्द्रकेतु ने कहा—तो आप भी दूसरे रथ पर बैठ जायँ।

लव ने शिष्टता से उत्तर दिया—हमें रथ पर चढ़ने का अभ्यास नहीं है। हम बनवासी हैं।

लव की बात सुमंत को बहुत पसन्द आई। उन्होंने कहा—महाराज रामचन्द्र तुम्हें देख लेते तो तुम्हें बहुत प्यार करते।

लव—मेरी भी उन पर बड़ी श्रद्धा है।

चन्द्र०—जब तुम्हें उन पर श्रद्धा है, तब उनकी सेना का विरोध क्यों कर रहे हो? क्या उनका प्रताप अधिक बढ़ना तुम्हे सहन नहीं?

लव—उनके सैनिकों ने दर्प भरे राक्षसी बचन कैसे कहे?

सुमंत ने हँसकर कहा—परशुराम का दर्प छुड़ानेवाले महाराज को शायद तुम जानते नहीं।

लव—ऊँह! ब्राह्मण को जीतना भी कोई भारी काम है (हँसकर)

ताड़का स्त्री का और छिपकर बाली का वध करनेवाले महाराज रामचन्द्र को कौन नहीं जानता ?

चन्द्रकेतु महाराज की निंदा सुनकर आपे से बाहर हो गया। उसने लव को युद्ध के लिए ललकारा। लव तो तैयार था ही; युद्ध आरम्भ हो गया।

सहसा "ठहरो! ठहरो" कहते हुए महाराज रामचन्द्र आकाश से नीचे उतरे। चन्द्रकेतु ने युद्ध रोककर उन्हें प्रणाम किया और लव से कहा—यही हमारे पिताजी के बड़े भाई हैं।

लव ने उन्हें प्रणाम किया और कहा—महाराज क्षमा करें, आपके सैनिकों के दर्पभरे वचन मैं सहन न कर सका।

चन्द्रकेतु—देखिये इनके चलाये अस्त्र के प्रभाव से सारी सेना बेहोश पड़ी है। महाराज ने और आश्चर्य से देखा; फिर पूछा—यह अस्त्र तुम्हारे अधिकार में कैसे आये ?

लव—हम दोनों भाइयों को यह आप-से-आप सिद्ध हो गये।

राम—दोनों भाई कौन ?

लव—जी हाँ, मेरे ज्येष्ठ भ्राता आर्य कुश हैं।

कुश युद्ध का समाचार पाकर इसी ओर आ रहा था। उसे देखकर राम का स्वाभाविक स्नेह उमड़ आया। लव ने भाई को देखते ही कहा—ये महाराज रामचन्द्र हैं।

कुश ने आश्चर्य से उनकी ओर देखकर उन्हें प्रणाम किया। महाराज ने उन्हें हृदय से लगाया और बड़े प्यार से उसका मुँह चूम लिया। इसी समय उन्हें सूचना मिली कि वशिष्ठजी के साथ महारानी इसी आश्रम में हैं। रामचन्द्र बालकों के साथ उनसे मिलने के लिए चले।

(५)

गंगा के तट पर मुनिवर वाल्मीकि के आश्रम में नाटक के अभिनय के लिए रणभूमि बनी। बहुत-से ऋषि-मुनि और अयोध्या के प्रमुख नागरिक अभिनय के समय उपस्थित थे।

अभिनय आरम्भ हुआ। पहले दृश्य में गर्भवती सीता को लक्ष्मण रामचन्द्र की आज्ञा से निर्जन वन में अकेला छोड़ गये। वेदना और क्षोभ के कारण सीता दुखी होकर गंगा में कूद पड़ी।

दूसरा दृश्य। गंगा और पृथ्वी गोद में एक नवजात शिशु को लिये प्रकट हुईं। सीता भी उनके साथ थीं। रोकर उन्होंने कहा—माता! तुम मुझे अपने में लीन कर लो।

पृथ्वी ने उन्हें समझाते हुए कहा—अभी इन बच्चों को तुम्हें पालना है।

सीता—मैं अनाथ होकर कैसे इनका पालन करूँगी। इनके क्षत्रियोचित संस्कार कौन करावेगा?

पृथ्वी—बेटी, समय आने पर मैं इन्हें भगवान वाल्मीकि को सौंप दूँगी। इसकी चिन्ता मत कर।

अभिनय समाप्त हो गया। सीता के जीवन के इस करुण दृश्य को देखकर सबकी आँखों से आँसू बहने लगे। राम मूर्च्छित हो गये। सहसा भागीरथी में लहरें उठने लगीं। और दूसरे ही क्षण गंगा और पृथ्वी सीता को लिए जल से निकलीं। भगवती अरुंधती को उन्होंने संबोधित करके कहा—तुम्हारी बधू सीता हम तुम्हें सौंपती हैं।

भगवती अरुंधती दोनों देवियों के साथ सभा में उपस्थित हुईं सीता भी उनके साथ थीं। अरुंधती ने सीता से कहा—बेटी लज्जा और संकोच छोड़कर रामचन्द्र को चैतन्य करो।

सीता ने लजाते हुए जाकर राम के शरीर पर हाथ फेरा। राम ने

स्वर्गीय आनन्द का अनुभव करते हुए आँख खोल दी। सामने जानकी को देख वे चकित हो गये। फिर स्वस्थ होकर उन्होंने तीनों देवियों को प्रणाम किया। तब अरुंधती ने अयोध्यावासियों से कहा—भगवती भागीरथी और वसुन्धरा देवी ने जिसकी पवित्रता की प्रशंसा की है यज्ञ मे उत्पन्न उसी सीता को ग्रहण करने में आप लोगों की क्या सम्मति है ?

प्रजा-वर्ग के लोग शर्म मे कटे जा रहे थे। उन्होंने सीता को प्रणाम करके उन्हें सादर ग्रहण करने की सम्मति दी। इसी समय लव-कुश दोनों कुमारों को वाल्मीकि ने उपस्थित किया और उनको अपना परिचय दिया। दोनों कुमारों ने बड़े आनन्द से गुरुजनों को प्रणाम किया। रामचन्द्र ने मुनिवर को प्रणाम किया और आकाश में फूलों की वर्षा होने लगी।

चन्द्रापीड़

[कादम्बरी]

अवन्ती के राजा का नाम तारापीड़ था। वह बड़ा वीर और पराक्रमी था। उज्जयिनी उसकी राजधानी थी। उसकी रानी विलासवती बड़ी पतिव्रता और सुन्दरी थी। शुकनास नाम का एक ब्राह्मण उसका मंत्री था। वह बड़ा राजभक्त था। उसकी पत्नी का नाम मनोरमा था। राजा और मंत्री को और सब सुख तो प्राप्त थे, परन्तु कोई सन्तान न थी। इससे वे प्रायः दुखी रहा करते।

एक दिन रानी विलासवती को अपने वन्ध्यापन का बड़ा दुःख हुआ। वह रोने लगी। राजा ने आकर उसे समझाया और कहा—प्रिये, कुछ अनुष्ठान करना चाहिए। शायद इससे देव प्रसन्न हो जायँ। और हमें सन्तान का मुख देखने को मिले।

भाग्य से हुआ भी ऐसा ही। व्रत करने पर रानी के एक पुत्र-रत्न हुआ। मंत्री शुकनास के भी एक पुत्र हुआ। राजा के पुत्र का नाम चन्द्रापीड़ रक्खा गया और मंत्री के पुत्र का नाम वैशम्पायन। सब लोग आनन्द में मग्न हो गये।

संस्कारों के उपरान्त दोनों बालकों की शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध किया गया। उस समय बालकों को गुरु के यहाँ पढ़ने जाना पड़ता था। अपना घर-बार छोड़कर वे गुरु के यहाँ ही रहते थे। चन्द्रा-

पीड़ और वैशम्पायन भी अपना घर छोड़कर गुरु के यहाँ पढ़ने गए। पुत्रों की उन्नति के विचार से माता-पिता ने भी उनका वियोग सह लिया।

दोनों बालक सदैव साथ रहते। दोनों ही कुशाग्र बुद्धि थे। शीघ्र ही उन्होंने सारी शिक्षा समाप्त कर ली। तब तक उनकी किशोरावस्था समाप्त हो चली थी। अब वे गुरु-गृह से राजमहल में आ गये। बहुत दिनों के बिछुड़े हुए पुत्रों को पाकर माता-पिता हर्ष से फूले न समाये।

एक दिन रानी विलासवती ने अपने पुत्र चन्द्रापीड़ के पास पत्र-लेखा नाम की एक किशोरी कन्या भेजी और कहलाया—बेटा, यह कन्या बड़े उच्च वंश की है। इसे तुम अपनी सहेली बनाना और इस पर सब तरह से विश्वास रखना। चन्द्रापीड़ ने माता की आज्ञा स्वीकार की और पत्रलेखा को अपने पास रख लिया।

कुछ दिनों के बाद राजा ने चन्द्रापीड़ को युवराज बनाने का विचार किया। अतः मंत्री शुकनास से उन्होंने राजकुमार को शिक्षा देने के लिये कहा। राजा की आज्ञा पाकर मंत्री राजकुमार के पास पहुँचा। चन्द्रापीड़ ने उसका बड़ा सम्मान किया। मंत्री ने उसे शिक्षा देते हुए कहा—वत्स! यौवन, धन, अविवेक और प्रभुत्व—ये चारों मनुष्य के शत्रु हैं। कभी इनके वश में नहीं होना चाहिए। विशेषकर राजाओं के लिए तो इनसे सावधान रहने की आवश्यकता अधिक है; क्योंकि उनको तो ठीक सलाह देनेवाले भी नहीं मिलते। सब हाँ-में-हाँ मिलाया करते हैं।

एक दिन शुभ मुहूर्त्त में राजा ने राजकुमार चन्द्रापीड़ को युवराज बनाया। सारे राज्य में आनन्द छा गया। दूर-दूर देशों के राजा उपहार लेकर आये। राजा ने उन सबका सम्मान किया और बहुत-सा दान देकर याचकों को सन्तुष्ट किया।

एक दिन प्रातःकाल युवराज चन्द्रापीड़ बड़ी सेना लेकर दिग्विजय

के लिये चल दिया। उसका मित्र मंत्री-पुत्र वैशम्पायन भी उसके साथ था।

(२)

चन्द्रापीड़ के घोड़े का नाम इंद्रायुध था। वह बड़ा वेगवान् था। राजकुमार उसी पर सवार था। कुछ दूर जाने पर उसने एक जोड़ा सुन्दर पक्षी उतरते देखा। पक्षी पकड़ने की इच्छा से राजकुमार ने घोड़ा दौड़ाया। घोड़ा भी उड़ चला। वह अपनी सेना से बहुत आगे निकल गया; मगर पक्षी का जोड़ा उसके हाथ न लगा।

अब चन्द्रापीड़ मार्ग भूलकर इधर-उधर भटकने लगा। इस समय तक वह बहुत थक गया था। उसे बड़ी प्यास भी लगी थी। अन्त में कुछ दूर पर उसे बहुत-से वृक्ष दिखाई दिये। पानी की आशा से वह उसी ओर चला। कुछ दूर पहुँचकर उसने एक बहुत सुन्दर तालाब देखा। चन्द्रापीड़ उस सरोवर की सुन्दरता और जल की स्वच्छता देखकर आश्चर्य में आ गया। थोड़ी देर तक तो वह एकटक उसकी ओर देखता रहा। इसके पश्चात् वह घोड़े से उतरा, सरोवर में स्नान किया और जल पीकर स्वस्थ हुआ। फिर एक शिला पर लेटकर अपनी थकावट मिटाने लगा।

उस सरोवर के दूसरे किनारे पर एक मंदिर था। उस ओर से संगीत की एक मधुर ध्वनि आ रही थी। थोड़ी देर आराम के बाद स्वस्थ होकर चंद्रापीड़ उसी ओर बढ़ा। उस स्थान के चारों ओर बड़ा सुहावना प्राकृतिक दृश्य था। राजकुमार मंत्र-मुग्ध-सा यह देखता हुआ मंदिर के अंदर चला गया। वहाँ उसने महादेवजी की चतुर्भुजी प्रतिमा के दर्शन किये। उसने बड़े आश्चर्य से देखा कि एक दिव्य रूपवाली सुन्दरी कन्या मूर्ति के सामने बैठी गा रही है। कुमार टकटकी बाँधकर

परम रूपवती कन्या को देखने लगा। उसने सोचा—यह कन्या नरलोक की तो नहीं जान पड़ती।

संगीत समाप्त करके युवती ने वीणा रख दी और प्रदक्षिणा करके महादेवजी को प्रणाम किया। फिर चंद्रापीड़ से कहा—महाशय, मेरा आतिथ्य स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करें। इतना कहकर वह सुन्दरी युवती मंदिर के बाहर आकर एक ओर को चल दी। थोड़ी दूर जाकर एक गुफा के द्वार पर वह रुकी। पीछे राजकुमार भी था।

वहाँ की भूमि बहुत स्वच्छ थी। दोनों एक-एक शिला पर बैठ गये। कन्या ने बड़ी प्रसन्नता से राजकुमार का स्वागत किया। उसने जल और फूल-फल से राजकुमार को संतुष्ट कर उसका परिचय पूछा। चंद्रापीड़ ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया और उसका भी परिचय पूछा। इस पर वह कन्या रोने लगी। राजकुमार ने उसे धैर्य बँधाया। तब उस कन्या ने चन्द्रापीड़ से कहा—

मैं एक गंधर्व की कन्या हूँ। नाम 'महाश्वेता' है। जब मेरी आयु लगभग १५ वर्ष की थी, एक दिन मैं अपनी माता के साथ इसी सरोवर में स्नान करने आई। यहाँ मैंने एक बड़े सुन्दर कुमार को देखा। उनके कानों में एक मंजरी खोंसी हुई थी। उसकी सुगंध चारों ओर उड़ रही थी। मैं उनसे अत्यंत प्रभावित हुई। कुमार भी मेरी ओर टकटकी लगाकर देख रहे थे। कुछ देर तक तो हम लोग एक दूसरे को इसी प्रकार देखते रहे। जब मेरी माता किसी काम से दूसरी ओर गई, तब मैंने बड़ा साहस करके उनके मित्र से उनका परिचय पूछा। मित्र ने कहा—ये महात्मा श्वेतकेतु मुनि के एकमात्र पुत्र हैं। इनकी माता का नाम लक्ष्मी है। इनका नाम पुंडरीक है। मैं उनके मित्र से इस प्रकार बात ही कर रही थी कि इसी समय स्वयं मुनिकुमार आगे बढ़े और मुस्कराकर मुझसे बोले—क्या इस मंजरी की सुगंधि तुम्हें पसन्द है? और उन्होंने वह मंजरी अपने कान से उतारकर मेरे कान में

पहना दी। फिर मैं मुनि-कुमार की ओर देखती हुई अपनी माता के साथ घर लौट आई।

घर पर मेरा मन जरा न लगा। मैंने मन-ही-मन मुनिकुमार को पति बना लिया था; क्योंकि हमारे समाज में कन्याओं को पति-वरण की पूरी स्वतन्त्रता है। पर, मुनिकुमार मुझे स्वीकार करेंगे या नहीं—इसमें दुविधा थी। इतने में मेरी एक सखी ने मुझे उनके मित्र के आने की सूचना दे दी। बड़े आदर से मैंने उसे बुलाया और उसका यथोचित सत्कार किया। कुशल पूछने पर उसने कहा—राजकुमारी! जब से मेरे मित्र ने आपको देखा है, वे पागल हो रहे हैं। उन्होंने घर जाना भी अस्वीकार कर दिया है। बार-बार मूर्च्छित होकर उसी सरोवर के किनारे पड़े हैं। अब आप जो उचित समझें, करें। यह कहकर, बिना मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये वह चला गया।

उसकी यह बात सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुई। मैंने उनको देखने जाना ही उचित समझा। अपनी सखी को साथ लेकर मैं उसी क्षण इस सरोवर की ओर चल पड़ी। मार्ग में मैं आनन्द-सागर में उतराती चली जाती थी।

वहाँ जाकर मैंने देखा कि मुनि-कुमार का मृत शरीर पड़ा हुआ है और उनका मित्र फूट-फूटकर रो रहा है। यह दृश्य देखते ही मैं मूच्छित होकर गिर पड़ी। जब मुझे होश आया, तब मैंने बड़ा विलाप किया; परन्तु वे न उठे। अतः मैंने चिता बनाकर सती होने का निश्चय किया। मेरी सखी लकड़ी बटोर लाई। अब मैं मुनिकुमार का शव गोद में लेकर सती होने के लिए बढ़ी ही थी कि सहसा चंद्रमंडल से एक दिव्य पुरुष उतरा और शव को लेकर आकाश को उड़ गया। यह देखकर उनका मित्र भी मुझसे यह कहता हुआ उस दिव्य पुरुष के पीछे-पीछे आकाश को उड़ गया कि जब तक मैं न आऊँ तब तक आप प्राण-त्याग न करें।

उसी दिन से मैं यहाँ रहती हूँ। मेरी एकमात्र सखी भी मेरे साथ यहीं रहती है।

इतना कहकर महाश्वेता रोने लगी। पूर्व का दृश्य उसके सामने खिंच गया। रोते-रोते वह मूर्च्छित हो गई। चंद्रापीड़ सरोवर से जल लाया। कई बार धीरे-धीरे उसके छींटे देने पर कुछ देर में वह सचेत हो गई। तब राजकुमार चंद्रापीड़ ने उससे उसकी सखी के विषय में पूछा। महाश्वेता ने धीरे-धीरे कहना शुरू किया—युवराज, चित्ररथ की कन्या कादम्बरी मेरी प्रिय सखी है। जन्म से ही हम दोनों साथ रही हैं। उसकी अवस्था इस समय विवाह-योग्य है; परन्तु जब से उसने मेरा यह दुःखदायी समाचार सुना है, उसने प्रतिज्ञा कर रक्खी है कि मैं भी तब तक विवाह न करूँगी जब तक मेरी सखी दुखिया रहेगी। इससे उसके माता-पिता बहुत दुखी हैं। उसी को समझाने के लिए मैंने अपनी सखी को भेजा है।

इसी समय महाश्वेता की सखी लौट आई। उसके साथ केयूरक नाम का एक युवक भी था। सखी ने महाश्वेता से कहा—राजकुमारी, आपकी प्रिय सखी प्रसन्न और स्वस्थ हैं। मैंने उनसे आपका संदेश कहा था। उसका उत्तर उन्होंने बड़े-बड़े आँसू गिराकर इस सेवक के हाथ भेजा है।

पूछने पर केयूरक ने कहा—देवि, राजकुमारी ने कहलाया है कि हे सखी, जिस हृदय में तुम्हारा वास है उसी में दूसरे को स्थान कैसे दूँ?

इतना सुनते ही महाश्वेता प्रेमाश्रु बहाने लगी। चंद्रापीड़ भी कादम्बरी के स्नेह की सराहना करने लगा। कुछ देर सोचकर महाश्वेता ने केयूरक को विदा किया और कहा कि मैं स्वयं आकर उसे समझाऊँगी। फिर चंद्रापीड़ से पूछा—राजकुमार, यदि आप मार्ग के सुन्दर प्राकृतिक दृश्य देखना चाहें तो मेरे साथ अवश्य चलें। आपके

चलने से कुछ लाभ ही होगा; क्योंकि सज्जनों के कुछ देर भी साथ रहने से दुखीजनों को बड़ी सांत्वना मिलती है। चंद्रापीड़ ने बड़ी प्रसन्नता से इसको मान लिया।

(३)

चन्द्रापीड़ महाश्वेता के साथ कादम्बरी के महल में पहुँचा। वहाँ की शोभा देखकर एक बार वह स्वयं आश्चर्य में आ गया। कादम्बरी अपनी सखियों के साथ बैठी थी। महाश्वेता को देखकर बहुत प्रसन्न हुई और चंद्रापीड़ की ओर तो एकटक देखती ही रह गई। आगे बढ़कर उसने महाश्वेता का स्वागत किया और उसके गले से लिपट गई। तब चंद्रापीड़ का परिचय देकर महाश्वेता ने कहा—सखी, अपने शुद्ध हृदय और साधारण गुणों के कारण इन्होंने मुझे अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है। तू भी इन पर विश्वास रख।

चंद्रापीड़ ने तब कादम्बरी का अभिवादन किया। उसने प्रसन्न होकर उत्तर दिया और बार-बार उसकी ओर देखने लगी। फिर उसने पान लेकर महाश्वेता की ओर बढ़ाये। महाश्वेता ने उत्तर दिया—सखी, आज ये तेरे मेहमान हैं। तू ही अपने हाथ से इन्हें पान दे। लजाती हुई कादम्बरी ने महाश्वेता की ओर देखते-देखते चंद्रापीड़ की ओर पान बढ़ा दिये। प्रसन्न होकर चंद्रापीड़ ने उन्हें ले लिया। कुछ समय पश्चात् महाश्वेता चंद्रापीड़ के रहने का उचित प्रबंध कराकर माता-पिता से मिलने चली गई। राजकुमार उपवन में जाकर घूमने लगा।

सायंकाल को कादम्बरी ने एक सखी के हाथ राजकुमार के पास बहुत-से फूल और एक दिव्य हार भेजा। उसकी सखी ने राजकुमार का शृंगार करके कहा—समुद्र से निकला हुआ 'शेष' नामक यह रत्न-हार गंधर्वराज से राजकुमारी को मिला था। आपके योग्य इसे देखकर

उन्होंने इसे आपके पास भेजा है। आप कृपा करके इसको स्वीकार कीजिये। इससे कादम्बरी को बड़ी प्रसन्नता होगी।

अपने ऊपर कादम्बरी का इतना प्रेम देखकर चंद्रापीड़ बड़ा प्रसन्न हुआ। हार पहनकर वह बहुत देर तक कादम्बरी की सखी से हँसी की बातें करता रहा।

चंद्रोदय के उपरात राजकुमारी एक सखी को लेकर स्वयं चंद्रापीड़ से मिलने आई। राजकुमार ने बड़ी प्रसन्नता से उसका स्वागत किया और कहा—राजकुमारी, आपने मेरा जितना आदर-सत्कार किया है उससे मैं कभी उऋण नहीं हो सकता। आपकी कृपा ने मुझे आपका दास बना दिया है।

इसी प्रकार बहुत देर तक बातें होती रहीं। अंत में कादम्बरी विदा होकर, राजकुमार की ओर बार-बार देखती हुई, अपने महल में चली आई।

दूसरे दिन चंद्रापीड़ कादम्बरी और महाश्वेता से विदा माँगने गया। चलते समय उसने कहा—देवी, कभी-कभी मेरी याद भी करना। कादम्बरी की आँखों में आँसू आ गये; परन्तु उसने बड़े धैर्य से राज-कुमार को विदा किया।

सरोवर के किनारे आकर राजकुमार ने अपनी सेना को, जो इन्द्रायुध के खुरों को देखते-देखते वहाँ आ गई थी, प्रतीक्षा करते पाया। दिन-भर वह अपने मित्रों से मिला और महाश्वेता तथा कादम्बरी की बातें करता रहा।

प्रातःकाल ज्योंही नित्य कृत्य से वह निवृत्त हुआ, त्योंही कादम्बरी के भेजे हुए केयूरक को उसने आते देखा। एकांत में उसे ले जाकर जब उसने दोनों प्रिय सखियों का कुशल-समाचार पूछा, तब केयूरक ने उत्तर दिया कि आपके आने के बाद से ही देवी कादम्बरी बहुत व्याकुल हैं। देवी महाश्वेता ने बड़े विनीत शब्दों में आपसे एक बार

फिर आकर दर्शन देने की प्रार्थना की है, और कहा है कि कादम्बरी के प्राणों की रक्षा अवश्य कर जायँ।

चंद्रापीड़ स्वयं चिन्तित हो अपने मित्र वैशंपायन को सेना का प्रबंध सौंप, अपनी प्रिय सखी पत्रलेखा को साथ ले, कादम्बरी के महल की ओर चला। वहाँ महाश्वेता और कादम्बरी बड़ी व्यग्रता से उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं। राजकुमार को आते देख उन्होंने आगे बढ़कर उसका स्वागत किया।

राजकुमारी कादम्बरी के मुख पर इस समय वह कांति नहीं थी, जो उसके एक दिन पहले देखी गई थी। अब तो वह महीनों की बीमार-सी मालूम पड़ती थी। उसकी यह दशा देखकर राजकुमार को बड़ा दुःख हुआ। उसने कहा—देवी, तुम्हारी अवस्था देखकर मेरा हृदय बड़ा विकल हो रहा है। अपने प्राण देकर भी मैं तुम्हें स्वस्थ देखना चाहता हूँ।

कादम्बरी लज्जा के कारण कुछ कह न सकी। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। तब राजकुमार ने उसे धैर्य धराया और पत्रलेखा को उसके पास छोड़कर तथा शीघ्र ही अपने आने का वादा करके अपनी सेना में लौट आया।

यहाँ उसके पिता का दूत उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। आने पर उसे पिता का पत्र मिला जिसमें उसे लौट आने को लिखा था। चंद्रापीड़ ने मित्र वैशंपायन को सेनापति नियत किया और स्वयं पिता के दर्शनों के लिए चल दिया।

(४)

चंद्रापीड़ के लौटने की सूचना पाकर उज्जयिनी में आनन्द छा गया। राजा और रानी की प्रसन्नता का तो अंत ही न था। राजा महल में जाकर रानी से चंद्रापीड़ के विषय में बातें कर ही रहे थे कि

राजकुमार आकर उनके पैरों पर गिर पड़ा। माता-पिता ने उसे छाती से लगा लिया और बड़े प्यार से अपने पास बैठाया। बहुत देर तक माता-पिता को अपनी बातों से सुख पहुँचाकर वह अपने मित्र के घर गया और मंत्री तथा उसकी स्त्री का आशीर्वाद लेकर महल में लौट आया। भोजन के बाद जब वह मार्ग की थकावट दूर करने के लिए लेटा, तब उसे कादम्बरी की याद आ गई। वह सोचने लगा—हाय! न जाने उसका स्वास्थ्य कैसा होगा! इसी प्रकार सोचते-सोचते वह सो गया।

दूसरे दिन पत्रलेखा केयूरक को लेकर उसके पास लौट आई। उसने बड़ी उत्सुकता से पत्रलेखा से कादम्बरी का समाचार पूछा। उसने उत्तर दिया कि देवी कादम्बरी की अवस्था अच्छी नहीं है। उन्होंने आपके वियोग में खाना-पीना भी त्याग दिया है। बार-बार वे मूर्च्छित हो जाती हैं। इसी से महाश्वेता ने मुझे आपको बुलाने के लिए भेजा है।

राजकुमार बहुत व्याकुल हुआ। फिर धैर्य धरकर उसने पत्रलेखा और केयूरक को कादम्बरी को समझाने के लिए भेज दिया। इसी समय उसे सेना के लौटने का समाचार मिला। इससे उसे कुछ धैर्य हुआ। उसने सोचा कि मित्र वैशंपायन से इस विषय में सम्मति लेनी चाहिए। वह चलने ही को था कि दूतों के द्वारा यह सुनकर कि वैशंपायन ने उस सरोवर को छोड़कर आना अस्वीकार कर दिया है, बड़ा विस्मित और दुखी हुआ। वैशंपायन के माता-पिता और राजा-रानी बहुत दिनों से उसका मुख देखने के लिए व्याकुल हो रहे थे। इस समाचार से उनको भी बड़ा दुःख हुआ; परन्तु राजकुमार ने उन्हें धैर्य धराया और स्वयं मित्र से मिलने के लिए सरोवर की ओर चला। राजा रानी ने कलेजे पर पत्थर रखकर इस बार भी उसे विदा किया।

सरोवर के किनारे आकर चन्द्रापीड़ वैशंपायन को ढूँढ़ने लगा। परन्तु वह कहीं न दिखाई दिया। खोजते-खोजते वह उस मन्दिर के पास पहुँचा। उसने वहाँ महाश्वेता को नीचा मुँह किये बैठे देखा। चंद्रापीड़ बड़ी उतावली से उसके पास जाकर पूछने लगा—आप यहाँ कैसे आईं ? क्या यहाँ मेरे मित्र को देखा है ?

महाश्वेता ने आँखों में आँसू भरकर कहना आरम्भ किया—राजकुमार, प्रिय सखी कादम्बरी का दुःख देखकर मेरे मन में एक दिन ऐसा वैराग्य उत्पन्न हुआ कि मैं वहाँ से उठकर सब नाता तोड़ इसी स्थान पर चली आई। यहाँ मैंने तुम्हारी ही तरह का एक युवक देखा। चन्द्रोदय हो चुका था। उस समय वह युवक मेरे समीप आकर बैठ गया और अश्लील बातें करने लगा। पहले तो मैंने समझाया, परन्तु जब वह आपे-से बाहर होने लगा और हाथ बढ़ाकर मुझे पकड़ने चला, तब मैंने उसे शाप दिया कि यदि मैंने प्रिय पति पुंडरीक के अतिरिक्त आजतक किसी पुरुष का स्वप्न में भी स्मरण न किया हो तो यह व्यक्ति भस्म हो जाय। मेरे मुँह से इतना निकलते ही वह युवक उसी क्षण भस्म हो गया। उसी समय आपके कुछ साथियों ने आकर बतलाया कि वह आप का मित्र था। तब मैं छाती पीट-पीटकर रोने लगी।

राजकुमार इतना सुनते ही 'हा ! मित्र वैशंपायन' कहकर गिर पड़ा और मित्र के वियोग में उसी क्षण उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। यह देखकर महाश्वेता बिलख-बिलखकर रोने लगी। रह-रहकर उसे मूर्च्छा हो जाती थी।

(५)

पत्रलेखा के मुँह से महाश्वेता के आश्रम में राजकुमार के आने का समाचार सुनकर कादम्बरी माता-पिता से सखी महाश्वेता से मिलने की

आज्ञा लेकर सरोवर के पास पहुँची। मार्ग में वह तरह-तरह से राजकुमार और महाश्वेता को उलाहना देने की बात सोच रही थी ; परन्तु वहाँ का दृश्य देखकर तो उसपर सचमुच ही वज्रपात हो गया ! राजकुमार के मृत शरीर तथा मूर्च्छिता महाश्वेता को वह आँखें फाड़ फाड़कर देखने लगी और फिर स्वयं मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। होश में आने पर रोते-रोते उसने सखी से चिता बनाने के लिए कहा और राजकुमार के शरीर को गोद में उठा लिया।

कादम्बरी का कर-स्पर्श होते ही एक दिव्य तेज-सा दिखाई दिया और यह आवाज सुनाई पड़ी—देवियों, शाप के कारण तुम्हें यह दुःख मिल रहा है। शीघ्र ही तुम्हारे पति तुम्हें मिल जायँगे।

कादम्बरी यह सुनकर आश्चर्य से आकाश की ओर देखने लगी। महाश्वेता उठ खड़ी हुई और पगली की भाँति दौड़कर यह कहते हुए इन्द्रायुध को सरोवर में ढकेल दिया कि जब तुम्हारे स्वामी ही न रहे तब तुम ही क्या करोगे ? इन्द्रायुध के डूबते ही सरोवर से एक मुनि-कुमार निकला और महाश्वेता के पास आकर कहने लगा—हे देवि, मुझे पहचानती हैं ? मैं आपके पुंडरीक का प्रिय मित्र हूँ जो उस रात आप को रोती-बिलखती छोड़कर उन दिव्य पुरुष के साथ आकाश को उड़ गया जो मेरे मित्र के शव को लिए जा रहे थे। वे चन्द्रमा थे। मेरे मित्र ने मरते समय आपके वियोग में चन्द्रमा को शाप दिया था और बदले में चन्द्रमा ने भी शाप दिया। इसी से मेरे मित्र ने फिर जन्म लिया और आपके शाप से जल मरे। पुंडरीक का शव चन्द्रलोक में सुरक्षित है और चन्द्रापीड़ का शव भी कादम्बरी के कर-स्पर्श से नहीं सड़ेगा। आप लोग इस शव को यत्नपूर्वक रक्षा करें। कुछ ही दिनों में, शाप का अन्त होने पर आप लोगों का दुख दूर होगा। यह कहकर वह चला गया।

(६)

चन्द्रापीड़ को गये जब बहुत दिन हो गये तब राजा तारापीड़ ने चिंतित होकर बहुत-से दूत खोज करने के लिए भेजे। उनसे कादम्बरी की सखी ने सब वृत्तांत समझाकर उन्हें विदा किया। राजा-रानी और वैशंपायन के माता-पिता पुत्रों के दुख से बहुत ही व्याकुल होकर बिलखने लगे। फिर धैर्य धारण करके उन्होंने उसी स्थान के लिए प्रस्थान किया। प्रजा के बहुत-से लोग भी उनके साथ हो लिये। उसी प्रकार कादम्बरी के माता-पिता भी वहाँ बिलखते हुए आ पहुँचे।

चन्द्रापीड़ की माता पुत्र का शव देख और कादम्बरी को गोद में बैठाकर बहुत रोने लगी। परन्तु वैशंपायन की माता को तो पुत्र का मुख भी देखने को न मिला। राजा ने स्वयं धीरज धरकर सबको समझाया। कादम्बरी की माता पुत्री के दुख से दुखी होकर बिलखने लगी। अन्त में उसकी सखी ने शाप की बात बतलाकर सब को धीरज दिया। तब दोनों कुटुम्ब प्रजावर्ग के साथ पुत्रों के दर्शनों की आशा में वहीं रहकर दिन बिताने लगे।

(७)

प्राणप्रिय चन्द्रापीड़ के शव की रक्षा में कादम्बरी ने दिन-रात एक कर दिया। न तो उसे दिन में भूख लगती थी और न रात में नींद—आठो पहर वह उसके पास ही बैठी रहती थी। फिर भी कादम्बरी के मुख की कांति बढ़ती ही जाती थी और चन्द्रापीड़ के मुख का तेज भी बढ़ता जाता था।

एक दिन वसंत ऋतु में स्नान करके कादम्बरी ने अपना शृंगार किया। फिर चन्द्रापीड़ का मुख देखकर वह और विकल हो उठी और उसने चन्द्रापीड़ का शव उठाकर अपनी छाती से क्या लगा लिया मानों मुर्दे में जान फूँक दी। सहसा राजकुमार जी उठा। कादम्बरी

कुछ सिटपिटाकर उसकी ओर देखने लगी। परन्तु, राजकुमार ने प्रेम मे उसका हाथ पकड़कर कहा—देवि! तुम्हारे ही प्रभाव से मैं जीवित हुआ हूँ। मैं इतने दिनों से राजा शूद्रक के रूप में विदिशा में राज करता था। मेरे मित्र पुंडरीक शाप-वश एक तोता बन गये। महर्षि जावालि से सारा वृत्तान्त सुनकर वे महाश्वेता से मिलने चले। अनिष्ट की आशंका से माता लक्ष्मी ने उन्हें पकड़वा लिया और आप चांडाल-कन्या बनकर उस अद्भुत तोते को मेरे पास ले आईं। तोते ने सारा वृत्तान्त मुझे सुनाया है। अब शाप का अन्त हो गया है। लो, मेरे मित्र पुंडरीक भी आ ही पहुँचे।

इसी समय आकाश से वैशंपायन उतरता दीख पड़ा। राजकुमार मित्र को देखते ही दौड़कर उससे लिपट गया और कादम्बरी महाश्वेता के गले से लिपट गई।

क्षणभर में दोनों कुटुम्बों में राजकुमार और वैशंपायन के जीवित होने की बात फैल गई। दोनों राजा, दोनों रानियाँ और मंत्री उत्सुकता से उन्हें देखने के लिए दौड़ पड़े। दोनों युवक दौड़कर उनके चरणों से लिपट गये। कादम्बरी के माता-पिता की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उन्होंने दोनों कुमारों को छाती से लगा लिया। फिर राजा और मंत्री से कादम्बरी के पिता ने प्रार्थना करते हुए कहा—यद्यपि हमारे समाज में गांधर्व विवाह का आधार रुचि है तथापि लौकिक रीति निबाहने के लिए आप हमारे यहाँ पधारने की कृपा करें। राजा तारा-पीड़ ने प्रसन्नता से यह प्रस्ताव स्वीकर कर लिया और चन्द्रापीड़ तथा कादम्बरी और वैशंपायन तथा महाश्वेता के विवाह की तैयारियाँ बड़ी धूमधाम से होने लगीं।

जीमूतवाहन

[नागानन्द]

राजकुमार जीमूतवाहन के पिता का नाम महाराज जीमूतकेतु और माता का महापुष्पा था। जब महाराज बूढ़े हो गये तब उन्होंने जीमूतवाहन को राज्य का भार सौंपा और महारानी महापुष्पा के साथ वन में तपस्या करने चले गये। राजकुमार जीमूतवाहन माता-पिता के बड़े ही भक्त थे। पिता के वन जाते ही उनका चित राज-काज से उचट गया। उन्होंने वन जाकर माता-पिता की सेवा करने का निश्चय किया। उनके मित्रों ने कहा—भाई, तुम माता-पिता की सेवा से मुक्त हो गये। अब सुख से राज्य के सुख भोगो। परन्तु राज-कुमार ने उन्हें यही समझाया कि माता-पिता की सेवा करना ही मेरे लिए सबसे बड़ा सुख है। इस पर एक मित्र ने कहा—राजकुमार, तुम्हारे जाते ही तुम्हारा शत्रु मतङ्ग राज्य पर आक्रमण करेगा और तुम्हारा राज्य छीन लेगा। तब तुम राजकुमार के समान सुख न भोग सकोगे।

परन्तु जीमूतवाहन ने हँसकर यही कहा—मुझे राज्य या शरीर की कुछ भी चिन्ता नहीं। मेरे लिए तो पिता की आज्ञा और उनकी सेवा ही सब कुछ है। यदि मैंने अपनी सेवा से माता-पिता को सुखी कर लिया तब मुझे वैसी ही प्रसन्नता होगी जैसी किसी राजकुमार को राज्य का सुख भोगकर होती है।

मित्रों को इस तरह समझाकर राजकुमार अपना राज्य छोड़कर पिता के पास चले गये और उनकी सेवा करने लगे। एक दिन उनके पिता ने आज्ञा दी—बेटा, मलय पर्वत पर जाकर कोई ऐसा स्थान ढूँढ़ो जहाँ मैं अपनी कुटी बनाकर रह सकूँ।

पिता की आज्ञा पाकर जीमूतवाहन मलय पर्वत पर पहुँचे। वहाँ के प्राकृतिक दृश्य देखकर मनुष्य क्या पशु-पक्षी तक मुग्ध हो जाते थे। राजकुमार भी आश्चर्य और प्रसन्नता से प्रकृति की अनुपम शोभा निरखने लगे। घूमते-घूमते वे एक तपोवन में पहुँचे। वहाँ की शान्ति देखकर पिता के लिए वहीं पर्णशाला बनाने का उन्होंने निश्चय किया।

मन-ही-मन राजकुमार ऐसा निश्चय कर ही रहे थे कि सहसा उन्होंने एक सुरीली और कोमल गाने की आवाज सुनी। उन्हें जान पड़ा कि पास के देवालय में ही कोई वीणा बजा रहा है। राजकुमार जीमूतवाहन सङ्गीत कला के मर्मज्ञ थे। गाना सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए। उनके मित्र ने उस गानेवाले को देखने की इच्छा से देवालय में चलने और वन्दना करने को कहा। परन्तु राजकुमार ने यह कह कर उसे रोक दिया कि न जाने वह कौन हो और यदि स्त्री हुई तो पराई स्त्री को देखना हमारे लिए उचित नहीं है।

मन्दिर में गानेवाली का नाम मलयवती था। जब राजकुमार अपने मित्र से बात कर रहे थे तभी मलयवती ने अपनी दासी के साथ प्रवेश किया। वह राजा विश्ववाद की कन्या थी। उसने भगवती गौरी को वीणा बजाकर प्रसन्न कर लिया था। देवी ने वर दिया कि जिस विद्याधर चक्रवर्ती को तूने चुना है, वह शीघ्र ही तेरा पाणिग्रहण करेंगे। उस समय वह अपनी सखी से देवी के वर की बात कह रही थी।

मलयवती को देवी का वर प्राप्त कर लेने पर बड़ी प्रसन्नता हुई और वह उसकी वन्दना करके मन्दिर से बाहर आई। यहाँ उसने राजकुमार जीमूतवाहन को अपने मित्र के साथ खड़े देखा। पहले

तो मलयवती उन्हें देखकर कुछ ठिठकी, पर बाद में प्रसन्न होकर आगे बढ़ी।

जीमूतवाहन ने यद्यपि मलयवती को अभी तक देखा नहीं था, तथापि उसकी सङ्गीतकुशलता देखकर ही हृदय से उस पर मुग्ध हो गये थे। परन्तु अब मलयवती के मुख से देवी के वर की बात सुनकर और यह जानकर कि यह किसी विद्याधर पर मुग्ध है, वे उसकी ओर से उदासीन से हो गये और देवी के दर्शन को चले। मलयवती सामने ही थी। चार आँखें हुईं। लज्जा से वह आँखें नीची करके कनखियों से उनकी ओर देखने लगी। राजकुमार जीमूतवाहन ने उनका परिचय पूछा। मलयवती की सखी ने सब बात कह सुनाई। इसके पश्चात् राजकुमार के मित्र ने जीमूतवाहन का पूरा परिचय दिया।

दोपहर हो गई थी। राजकुमारी के गुरु का एक शिष्य उसे ढूँढ़ता हुआ वहाँ आया। राजकुमार और राजकुमारी ने उसे प्रणाम किया। दोनों को देख मन-ही-मन प्रसन्न होकर उसने आशीर्वाद दिया और मलयवती से कहा—बेटी तुझे कुलपति ने शीघ्र बुलाया है।

राजकुमारी "जो आज्ञा" कहकर उसके पीछे चलने को हुई। चलने के पहले एक बार उसने बड़े प्रेम से राजकुमार जीमूतवाहन की ओर कुछ ल.जाते हुए देखा और तब धीरे-धीरे उस शिष्य के साथ चली गई। राजकुमार भी सानुराग उसकी ओर देखते रह गए।

(२)

घर पहुँचकर मलयवती राजकुमार जीमूतवाहन के प्रेम से व्याकुल हो गई। वह अपना मन बहलाने के लिए चन्दन लता की ओर चली गई; परन्तु वहाँ भी उसे शान्ति न मिली। उसकी चतुर दासी सब बातें समझ गई और उसको समझाने लगी कि जिस प्रकार भगवान विष्णु लक्ष्मीजी से अलग रहकर सुखी नहीं हो सके उसी प्रकार उसका

"वर" भी उसे न पाकर व्याकुल होगा। राजकुमारी ने कोई उतर न दिया। उसके नेत्रों में जल भर आया और वह रोने लगी।

उधर राजकुमार जीमूतवाहन भी उसी की भाँति राजकुमारी मलयदेवी के प्रेम में पागल हो रहे थे। अपनी विरहाग्नि शान्त करने की इच्छा से वह उन स्थानों पर जाकर बैठे जहाँ राजकुमारी मलयवती खड़ी रही थी। पर उन्हें शान्ति न मिली। तब उन्होंने एक स्फटिक शिला पर मलयवती का चित्र बनाने का निश्चय किया। अपना यह विचार अपने मित्र पर प्रकट करके उन्होंने कहा—भाई कुछ धातु खंड ले आओ तो मैं एक चित्र बनाऊँ।

मित्र ने पूछा—किसका चित्र ?

राजकुमार ने क्षीण स्वर में उत्तर दिया—मैंने स्वप्न में एक सुन्दर स्त्री देखी है, उसी का चित्र मैं बनाना चाहता हूँ।

मित्र धातु खंड लेने चला गया।

मलयवती पास ही एक सघन कुंज में खड़ी हुई राजकुमार जीमूत बाहन की सारी बातें सुन रही थी। चित्र और स्वप्न की बात सुनकर उस पर तो जैसे बज्रपात हो गया। उसने समझा कि राजकुमार किसी दूसरी युवती पर मुग्ध हैं और उसी का चित्र बनाना चाहते हैं। इसी समय उसके भाई मित्रावसु ने आकर जीमूतवाहन से कहा—राजकुमार मेरे पिता अपनी एकमात्र प्राणाधार कन्या आपको सौंपना चाहते हैं और आपसे उसको स्वीकार करने की प्रार्थना की है।

राजकुमारी मलयवती उत्सुकता से राजकुमार की ओर देखने लगी। जीमूतवाहन ने समझा कि यह किसी और राजकुमारी की बात कह रहा है, और जिस मलयवती पर मैं मुग्ध हूँ, वह कोई और है। इसलिए उसने एक बार ठंढी साँस लेकर कहा—महाराज ने इतनी कृपा करके हमें जो गौरव दिया है इसके लिए हम उनके

बड़े कृतज्ञ हैं। परन्तु उसे स्वीकार करने में मैं असमर्थ हूँ। इसलिए हमें क्षमा करें।

मलयवती इतना सुनते ही मूर्च्छित हो गई। मित्रावसु भी हतप्रभ से उनकी ओर देखने लगे। पर राजकुमार के मित्र ने बात बनाली। उसने मित्रावसु से कहा—श्रीमान्! यह प्रस्ताव तो राजकुमार के माता-पिता से आप करें, क्योंकि हमारे राजकुमार तो पराधीन हैं। यदि आप इनके माता को इसके लिए राजी कर लेंगे तो राजकुमार उनकी आज्ञा का अवश्य पालन करेंगे।

मित्रावसु उनके पिता के पास चले और जीमूतवाहन चित्र बनाने लगे। परन्तु राजकुमारी यह अपमान न सह सकी। उसने दासी को भाई से मिलने भेज दिया और स्वयं फाँसी लगाकर प्राण देने को तैयार हुई। परन्तु दासी शीघ्र ही लौट आई और मलयवती को फाँसी लगाते देखकर चिल्लाने लगी। दूसरे ही क्षण जीमूतवाहन ने आकर राजकुमारी का हाथ पकड़ लिया और इसका कारण पूछा। राजकुमारी तो लजाकर खड़ी हो गई, परन्तु उसकी दासी ने कहा—इसका कारण आप ही हैं जो आपने विवाह के प्रस्ताव को किसी दूसरी राजकुमारी के वश होकर अस्वीकार कर दिया और जिसका चित्र आपने उस शिला पर बनाया भी है।

राजकुमार ने इस पर मुस्कराते हुए कहा—तब तो मैं राजकुमारी का हाथ तभी छोड़ूँगा जब ये चलकर उस चित्र को देख लेंगी।

सबने जाकर चित्र देखा। मलयवती शिला पर अपना ही चित्र अंकित देखकर प्रसन्नता से गद्‌गद् हो मुस्कराकर राजकुमार की ओर देखने लगी। राजकुमार जीमूतवाहन भी हँसने लगे। इसी समय एक दासी ने आकर कहा—राजकुमार के पिता ने तुम्हें वधू रूप में स्वीकार कर लिया है। चलो, पाणिग्रहण आज ही होगा।

राजकुमारी मुदित होकर लजाती हुई दासी के साथ चली गई।

(३)

जीमूतवाहन और मलयवती का विवाह उसी दिन हो गया। वे दोनों सुख से रहने लगे। एक दिन नव-दम्पति प्रातःकाल उद्यान की शोभा बढ़ा रहे थे। जीमूतवाहन ने राजकुमारी के शरीर की सुन्दरता का वर्णन करना आरम्भ किया और कहने लगे कि मेरे बड़े भाग्य थे जो लक्ष्मी के समान ऐसी सुन्दर राजकन्या को मैं प्राप्त कर सका। इस पर मलयवती ने हँसकर अपनी सखी से कहा—देख सखी, ये केवल सुन्दर नहीं है, चतुर भी हैं, और बातें बनाना भी जानते हैं।

राजकुमार के मित्र ने कहा—आप चलते-चलते थक गई होंगी। इससे कुछ देर इस स्थान पर बैठकर विश्राम कर लें। राजकुमार ने भी उसकी बात का समर्थन किया और राजकुमारी का हाथ पकड़कर एक स्वच्छ शिला पर बैठ गए। राजकुमार के मित्र की हँसी उड़ाने के लिए राजकुमारी की सखी ने एक नीले फूल के रस से उसका मुख रँग दिया। इससे वह उस पर कुछ नाराज होकर वहाँ से चल दिया। राजकुमारी की सखी भी उसे मनाने का बहाना करके बाहर चली गई। सहसा उसने लौटकर राजकुमारी मलयवती के भाई मित्रावसु के आने की सूचना दी। जीमूतवाहन ने राजकुमारी को सखी के साथ महल में भेज दिया और आप आगे बढ़कर मित्रावसु का स्वागत किया। उसने आकर कहा—आपके राज्य पर मतंग ने आक्रमण किया है। आप हमें आज्ञा दें तो हम उसे इसका समुचित दंड दे आवें।

परन्तु राजकुमार ने उसे समझाते हुए कहा—भाई, क्लेश और चिंता के अतिरिक्त मेरा तो कोई शत्रु नहीं है। इससे मैं तुमसे यही कहूँगा कि इस मतंग पर दया करो जो राज्य के लिए अपने

क्लेशों को बुला रहा है। परन्तु इससे मित्रावसु का क्रोध शान्त न हुआ। तब राजकुमार उन्हें समझाने के लिए अपने महल में लेकर चले गए।

(४)

एक दिन जीमूतवाहन समुद्र के किनारे घूम रहे थे। वहाँ उन्होंने साँपों की हड्डियों का एक बड़ा समूह देखा। उन्हें इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ। जब उन्होंने इसके संबंध में पता लगाया तो मालूम हुआ कि पक्षिराज गरुड़ को साँपों के खाने का बड़ा शौक़ है। वे इसके लिए पाताल में सर्पलोक को जाते और वहाँ मनमाने साँपों को पकड़कर खा जाया करते थे। उनको दूर से आता देखकर भय के कारण बहुत सी साँपों की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते थे। इस पर सर्पराज वासुकि ने पक्षिराज से प्रार्थना की कि प्रतिदिन हम एक नाग आपके भोजन के लिए भेज दिया करेंगे। आप इस प्रकार हमारे नाग-वंश का नाश न करें। हम इसके लिए आपके बड़े कृतज्ञ होंगे। पक्षिराज गरुड़ ने यह प्रार्थना स्वीकार करली और तब से प्रतिदिन एक नाग उनके लिए भेजा जाता है। उन्हीं के द्वारा भक्षण किए हुए नागों की हड्डियों का यह समूह है।

इसी समय दूर पर उन्हें शंखचूड़ नाम का नाग आता दिखाई दिया। यह अपनी माता का अकेला बेटा था। आज पक्षिराज गरुड़ के भोजन के लिए इसी की बारी थी। अपने इकलौते पुत्र के प्रेम के कारण उसकी माता भी उसी के साथ आ रही थी और बिलख-बिलख कर वह कह रही थी—हाय बेटा! तेरे बिना सारा लोक मेरे लिए अंधकारपूर्ण हो जायगा। हाय! तुझे मैंने सैकड़ों मनोरथ करके पाया था। अब किसको देखकर मैं जिऊँगी। हाय! मुझ अंधी की लकड़ी भी छिनी जाती है।

माता का यह विलाप सुनकर शंखचूड़ उसे समझा रहा था—माता, धीरज धरो। देखो, मैं अपनी जाति की रक्षा के लिए अपनी प्राणों की बलि दे रहा हूँ। यह तो तुम्हारे लिए बड़े गर्व का अवसर है। इस समय तुम्हें इस प्रकार अधीर नहीं होना चाहिए।

इस प्रकार शंखचूड़ बार-बार अपनी माता को धीरज देता था। परन्तु उसकी माता को इस पर संतोष न हुआ। वह रोती ही रही और रोते-रोते मूर्छित होकर गिर पड़ी।

राजकुमार का सदय हृदय यह करुण दृश्य देखकर पिघल गया। उन्होंने अपने मन में निश्चय किया कि किसी तरह भी हो मैं इस वृद्धा स्त्री को अवश्य सुखी करूँगा और इसके एक मात्र पुत्र के प्राण बचाऊँगा। जो शंखचूड़ अपनी जाति के लिए अपने प्राणों की बलि दे रहा है उसकी रक्षा के लिए यदि मुझे अपने प्राण भी देने पड़ें तो कोई चिंता नहीं है। ऐसा निश्चय करके वे शंखचूड़ और उसकी माता के सामने आ गए।

भयभीत वृद्धा ने जीमूतवाहन को ही पक्षिराज गरुड़ समझा और अपने पुत्र को अपने आँचल में छिपाती हुई उससे बोली—पक्षिराज! मेरे पुत्र को छोड़ दो। उसके बदले में आज तुम मुझे ही खालो।

जीमूतवाहन ने आगे बढ़कर कहा—माता, भयभीत मत हो। मैं पक्षिराज गरुड़ नहीं हूँ; एक साधारण मनुष्य हूँ। तुम निश्चिन्त रहो। मेरे रहते तुम्हारे पुत्र का बाल बाँका न होगा।

राजकुमार जीमूतवाहन की बात सुनकर वृद्धा की आँखों से प्रसन्नता के आँसू बहने लगे। उसने हाथ जोड़कर कहा—बेटा, तुम जुग-जुग जियो।

शंखचूड़ दो लाल वस्त्र पहिने था। यही वध-चिह्न था। राजकुमार ने उससे दोनों वस्त्र माँगे। शंखचूड़ ने धन्यवाद देकर कहा—भाई,

यदि आप मेरे ऊपर कृपा ही करते हैं तो मेरी माता के प्राण बचाइये मैं आपको यह वस्त्र देकर कष्ट में नहीं डाल सकता।

राजकुमार ने कहा—यदि तुम अपनी माता की रक्षा ही करना चाहते हो तो तुम मुझे ये दोनों लाल वस्त्र दे दो, तुम्हारी माता की रक्षा हो जायगी।

शंखचूड़ ने कहा—नहीं, मैं अपने लिए आप के प्राण संकट में नहीं डाल सकता। पक्षिराज अब आते ही होंगे; आप कृपा करके मेरी माता को समझाइए।

तब उसने हाथ जोड़कर माता से बिदा ली और उस स्थान की ओर चला जहाँ पक्षिराज अपना आहार लेने के लिए नित्य आते थे।

राजकुमार जीमूतवाहन को इससे बड़ा दुःख हुआ। वह अपने जीवन को धिक्कारने लगे, क्योंकि वे दूसरे के काम न आ सके। परन्तु इसी समय उनकी ससुराल के एक सेवक ने आकर दो लाल वस्त्र देकर कहा—महाराज ने दीपावली के उपहार-स्वरूप ये दो लाल वस्त्र आपके पास भेजे हैं। आप इन्हें धारण करें।

राजकुमार जीमूतवाहन को ये वस्त्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। सेवक को बिदा करके उन्होंने अपने मन में कहा कि मलयवती से विवाह करना आज सफल हो गया। फिर शीघ्र ही उन्होंने दोनों कपड़े पहने और दूसरी ओर से तुरन्त वध्य शिला पर बैठ गए। इसी समय वेग से उड़ते हुए पक्षिराज आगए। राजकुमार को ही अपना आहार समझ कर उन्होंने जीमूतवाहन को अपनी चोंच में दबा लिया और खाने के लिए मलयाचल की ओर उड़ गए।

राजकुमार जीमूतवाहन का यह अपूर्व त्याग देखकर आकाश से देवता पुष्प बरसाने लगे; परन्तु पक्षिराज गरुड़ ने समझा कि उनके बेग के कारण वृक्षों से फूल गिर रहे हैं।

(५)

जीमूतवाहन के पिता जीमूतकेतु जिस स्थान पर बैठे तप कर रहे थे, उड़ते हुए पक्षिराज की चोंच में दबे हुए जीमूतवाहन की भुजा की चूड़ामणि उसी स्थान पर गिर पड़ी। चौंककर उन्होंने उसे उठा लिया। वह चूड़ामणि रक्त-मांस से सनी हुई थी। इससे जीमूतकेतु बड़े सोच में पड़ गए। इसी समय मलयवती के पिता का भेजा हुआ एक सेवक आया। उसने पूछा—राजकुमार समुद्र के किनारे घूमने गए थे, पर अभी तक लौटे नहीं हैं। यहाँ तो नहीं आए?

इतना सुन कर और राजकुमार की चूड़ामणि पहचान कर वृद्ध माता-पिता पुत्र के अनिष्ट की आशंका से भयभीत होकर दुखी होने लगे। उन्हें दुखी देख और उनके मन का भाव समझ मलयवती भी रोने लगी। सहसा शङ्खचूड़ ने "हा! विश्व-चूड़ामणि, मैं तो लुट गया" कहते हुए प्रवेश किया। इससे वृद्ध माता-पिता ने समझा कि इस व्यक्ति की चूड़ामणि खो गई है। अतः उन्होंने उसे बुलाकर पूछा—पुत्र! क्या तेरी चूड़ामणि कोई ले गया है?

शङ्खचूड़ ने रोते हुए कहा—मेरी ही नहीं, किन्तु विश्व की चूड़ा-मणि आज लुट गई है।

वृद्ध जीमूतकेतु उसका मतलब न समझे। इसलिए उन्होंने बड़ी शीघ्रता से शङ्खचूड़ से कहा—बेटा, शीघ्र ही अपने दुख का कारण मुझसे समझाकर कहो।

शङ्खचूड़ ने आरम्भ से सब बात बता दी और कहा कि मुझे देवी के मन्दिर में कुछ देर हो गई। बस, उनको अवसर मिल गया और उन्होंने मेरे स्थान पर शीघ्र ही पहुँचकर अपने को पक्षिराज गरुड़ की भेंट कर दिया।

मलयवती इतना सुनते ही "हाय" कहकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

वृद्ध माता-पिता भी विलाप करने लगे कि हा! जीमूतबाहन तुम तो सदैव मेरी सेवा करते थे, आज हमें इस तरह दुख-सागर में में क्यों छोड़ गये। फिर राजकुमार की मणि को उन्होंने हृदय से लगा कर रोते-रोते कहा—हा पुत्र! क्या अब तेरा दर्शन न होगा?

मलयवती ने होश में आकर कहा—मुझे आर्य पुत्र की चूड़ामणि दे दो, जिससे मैं सती होकर उन्हीं के पास पहुँच जाऊँ।

वृद्ध पिता "हा! अब तो हमारा भी यही निश्चय है" कहकर अग्नि लेने चले। मार्ग में ही उन्हें राजकुमार और पक्षिराज दिखाई पड़े। गरुड़ ने उनके शरीर का अधिकांश भाग खा लिया था, फिर भी जीमूतवाहन प्रसन्नता से उनकी ओर देख रहे थे। पक्षिराज को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने राजकुमार का परिचय पूछा। शङ्खचूड़ ने इसी समय आगे बढ़कर कहा—पक्षिराज मैं नाग हूँ, मुझे वासुकि ने आपके भोजन के लिए भेजा था। परन्तु इन्होंने मेरे प्राण बचाने के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी।

पक्षिराज गरुड़ को यह बात सुनकर बड़ा पश्चाताप हुआ। उस परोपकारी के प्राण हरने के प्रायश्चित में उन्होंने अपने को भस्म करने का निश्चय किया। वृद्ध पिता अग्नि ला ही रहे थे। उसने विचारा कि इन्हीं से अग्नि माँग लूँ। परन्तु जीमूतकेतु अपने मरणासन्न पुत्र को देखकर विलाप करने लगे। राजकुमार ने माता-पिता को देख उनके अभिवादन के लिए उठना चाहा, परन्तु शरीर में शक्ति न रह जाने के कारण वे गिरकर मूर्च्छित हो गये। वृद्धा माता इस पर रो पड़ी—हाय बेटा, तुम आज तो वचनों से भी मेरा स्वागत नहीं करते।

जीमूतवाहन ने होश में आकर सावधान हो माता-पिता को धीरज

दिया। तब शङ्खचूड़ से कहा कि मित्र मेरे हाथ जोड़ दो। शङ्खचूड़ ने वैसा ही किया। "हे माता-पिता, यह मेरा अन्तिम प्रणाम है" कहकर उन्होंने अपनी आँखें मूँद लीं।

यह देखकर वृद्ध माता-पिता और मलयवती तीनों फिर मूर्च्छित हो गये। सचेत होने पर उन्होंने शङ्खचूड़ से चिता तैयार करने के लिए कहा। मलयवती ने एक बार ऊपर देखकर कहा—हे भगवती गौरी! तुमने कहा था कि तेरा पति विद्याधर चक्रवर्ती होगा। हा! मुझ अभागिन के लिए क्या तुम्हारे भी बचन असत्य हो गये?

सहसा भगवती प्रगट हुईं। अपने कमण्डल से जल छिड़ककर उन्होंने जीमूतवाहन को जीवित कर दिया। वृद्ध माता-पिता और मलयवती तीनों देवी के चरणों पर गिर पड़े। उधर पक्षिराज ने आकाश से अमृत की वर्षा करके सब नागों को जीवित कर दिया। वे सब चारों ओर नाच-नाचकर बड़े प्रेम से अमृत पीने लगे।

चारुदत्त

[मृच्छकटिक]

चारुदत्त नामक एक ब्राह्मण उज्जैन नगरी में रहता था। वह बड़ा चरित्रवान और सज्जन था। पिता के जीवन-काल में उसने संसार के सभी सुख भोगे और बड़े आराम से दिन बिताए। सभी विद्याओं के साथ-साथ उसने संगीत का भी विधिपूर्वक अध्ययन किया और कुछ ही समय में वह गाने में पूरा पण्डित हो गया; परन्तु किशोरावस्था से निकलकर उसने युवावस्था में पदार्पण किया ही था कि अचानक उसके पिता की मृत्यु हो गई। बेचारे बालक की माता पहले ही काल-कवलित हो चुकी थी। अब पिता के मरने पर उसके संबंधियों की बन आई। उन्होंने उसका सब माल लूट लिया। जो कुछ बच रहा वह कर्मचारियों के हाथ लगा और माता-पिताहीन बेचारे युवक की करुण दशा पर किसी का भी हृदय न पसीजा। चारुदत्त का विवाह हो चुका था। उसकी स्त्री बड़ी सुशील और पतिव्रता थी। अपने पति को प्रसन्न रखना ही वह अपना सबसे बड़ा धर्म समझती थी; वह स्वयं कष्ट सह लेती; परन्तु अपने पति को दुखी नहीं होने देती थी। चारुदत्त भी उससे बड़ा प्रेम करता था और उसी का मुख देखकर जीता था। पर विपत्तिं कभी अकेले नहीं आती। इस संकट के समय में ही उसकी स्त्री एक पुत्र को जन्म देकर इस असार-संसार से विदा हो गई। चारुदत्त

पर अब जैसे आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। परन्तु भाग्य के आगे किसी का कुछ वश नहीं चलता, यह सोंचकर अपने कलेजे पर पत्थर रखकर इस विपत्ति को भी उसने सहन किया। अपने एकमात्र पुत्र के लालन-पालन में ही अब उसके दिन बीतने लगे।

उसी नगर में रम्भा नाम की एक बूढ़ी स्त्री रहती थी। उसकी वसन्तसेना नाम की एक सुन्दर कन्या थी। रम्भा चाहती थी कि मेरी पुत्री धनियों को प्रसन्न करके खूब धन इकट्ठा करे। इसके लिए उसने वसन्त सेना को नाचने-गाने की विद्या में पूर्ण चतुर कर दिया। इसके अतिरिक्त वसन्तसेना को उसने और भी बहुत सी ऐसी बातें सिखलाईं जिनसे वह धनियों को अपने काम से प्रसन्न करके उनका धन ठग सके। पर वसन्तसेना उच्च-विचारवाली बालिका थी। उसे ऐसे कामों से घृणा थी। यद्यपि कभी-कभी अपनी माँ को प्रसन्न रखने के लिए उसे धनियों के सामने नाचना-गाना पड़ता था, तथापि किसी को धोखा देकर उसका धन ठगना उसे पसंद न था। वह मंदिरों और धर्म-स्थानों में भी जाया करती थी।

एक दिन सौभाग्य से चारुदत्त से उसकी भेंट हो गई। स्त्रियों की ओर से यह ब्राह्मण युवक विशेष सावधान रहा करता था। यदि कभी उसका कोई मित्र किसी स्त्री की सुन्दरता का वर्णन करता तो चारुदत्त उसे रोककर कहता—भाई! इस विषय में मत कहो। मुझे इस विषय से घृणा-सी हो गई है। संसार की सब सुन्दर स्त्रियों से अधिक मुझे यह पुत्र प्यारा है।

चारुदत्त संगीत में बड़ा कुशल था और वसन्तसेना भी नाचने-गाने में बड़ी चतुर हो गई थी। इसलिए दोनों एक दूसरे से परिचित हो चुके थे। धीरे-धीरे यह परिचय बढ़ता रहा और दोनों एक दूसरे से प्रेम करने लगे। एक दिन घर आकर चरुदत्त ने अपने मित्र से सब बातें कह सुनाईं; फिर एक ठंडी साँस लेकर धीरे से कहा—आह! मैं

चाहता हूँ कि मैं उसे सोने से ढक दूँ, मोतियों से उसकी माँग भर दूँ। पर, हाय? दरिद्रता! हाय रे मेरा दुर्भाग्य !!

(२)

उज्जैन के महाराज का कुमार संस्थापक नामक एक संबंधी वसन्तसेना पर मुग्ध था। वह बड़ा दुष्ट था और राजा के छोटे-बड़े सभी सरदार उसके नाम से थर-थर काँपते थे। वसन्तसेना की माँ को उससे बहुत सा धन मिलने की आशा थी। इसलिए वह भी यही चाहती थी कि वसन्तसेना उसी से प्रेम करे। इसके लिए वह बार-बार उसे उत्साहित भी करती रहती थी। परंतु वसन्तसेना उससे घृणा करती थी। कुमार को देखकर उसकी आँखों में खून ही उतर आता था। उधर कुमार वसन्तसेना के लिए उतावला हो रहा था और उसे फुसलाने के लिए रम्भा को काफी धन भी दे चुका था।

एक दिन चारुदत्त वसन्तसेना के घर बैठा जलपान कर रहा था, इतने में उसे कुमार के आने की सूचना मिली। यह सुनकर चारुदत्त बहुत क्रुद्ध हो कुमार को मारने के लिए तैयार हुआ। रम्भा उसका रौद्र रूप देखकर घबड़ा गई। उसने किसी प्रकार उसे शांत किया। फिर जाकर बोली—वसन्तसेना आज अस्वस्थ है। अतः क्षमा करो। कल उससे तुम्हारी अवश्य भेंट कराऊँगी। इस पर कुमार झल्लाकर चला गया।

वसन्तसेना का मकान चारुदत्त के घर के पास ही था। दूसरे दिन कुमार के आते ही वह उसे धोखा देकर चारुदत्त के मकान में चली गई। कुमार ने इससे अपना अपमान समझा और उसका पीछा किया। चारुदत्त के घर पहुँचकर वसन्तसेना ने उससे धर्म और प्राण बचाने की प्रार्थना की। चारुदत्त ने उसे अभयदान दिया और अपने घर के अंदर भेज दिया। शीघ्र ही कुमार भी वहाँ आ पहुँचा। चरुदत्त

ने उसे देखते ही तलवार खींच ली। कुमार को इस पर क्रोध तो आया, पर न जाने क्यों वह लड़ने को तैयार न हुआ और यह कहता हुआ चला गया कि मुझे अपमानित करने का फल तुझे शीघ्र ही भोगना पड़ेगा।

इधर घर में वसन्तसेना चारुदत्त के पुत्र के साथ खेलने लगी। उस बालक ने उसे "माँ" कहकर संबोधित किया। वसन्तसेना इस पर बहुत प्रसन्न हुई और उसने अपने सभी गहने "पुत्र" को पहना दिये, फिर बड़े स्नेह से उसे छाती से लगा लिया।

(३)

रम्भा को पुत्री का चारुदत्त से प्रेम करना अच्छा नहीं लगता था। वह चाहती थी कि वसन्तसेना सभी से धन ठगती रहे, किसी से प्रेम न करे। कुमार को वह इसीलिए प्रसन्न रखना चाहती थी कि वह धनी था। अतः उसके अपमानित और क्रोधित होने की बात जब रम्भा ने सुनी तो उसने अपनी पुत्री को बहुत बुरा-भला कहा और फिर कुमार को समझाने गई। कुमार कुछ दुष्टों के साथ चारुदत्त को दंड देने के लिए गुप्त सलाह कर रहा था। रम्भा ने उससे जाकर बहुत अनुनय-विनय की और कहा—महाराज! यदि आप किसी प्रकार चारुदत्त को मार्ग से हटा दें तो वसन्तसेना आपकी हो जायगी; नहीं तो यह दुष्ट मेरा सर्वनाश कर डालेगा। अभी उस दिन वसन्तसेना अपने सब गहने उसके पुत्र को दे आई है।

यह बात सुनकर कुमार बड़ा प्रसन्न हुआ उसने कुछ देर तक सोचकर पूछा—इस समय वे दोनों कहाँ हैं? रम्भा ने उत्तर दिया—इस समय नहीं, आज शाम को दोनों ने बाग में मिलने का वादा किया है। उस समय आप अपना काम करें। पर मेरी बेटी का कुछ भी अनिष्ट न हो, यही प्रार्थना है।

कुमार ने मुस्कराकर उसे बहुत सा धन दिया और कहा—चारुदत्त को आज प्रेम और मृत्यु दोनों ही का मजा चखा दूँगा। रम्भा उठकर जाने लगी तब उसने एक बार फिर हाथ जोड़कर पुत्री का अनिष्ट न होने की प्रार्थना की। कुमार ने कहा—अरी पगली, उसी को पाने के लिए तो इतना प्रयत्न कर रहा हूँ। फिर कहीं उसका बाल-बाँका हो सकता है।

कुमार बहुत से दुष्टों को लेकर शीघ्र ही उसी बाग में जा पहुँचा जहाँ वसन्तसेना और चारुदत्त मिलनेवाले थे। वहाँ उसने अपने सब साथियों को पेड़ और झाड़ियों की आड़ में छिपा दिया और कुछ आदमियों को चारुदत्त को मारने के लिए नियुक्त कर दिया। तब वह स्वयं एक पेड़ की आड़ में छिपकर दोनों के आने की प्रतीक्षा करने लगा।

नियत समय पर वसन्तसेना बाग में आई। एकान्त में उसे देख कर कुमार उसकी ओर बढ़ा और मुस्कराकर बोला—आज तो मुझ पर बड़ी कृपा की है।

वसन्तसेना एकाएक उसे सामने देखकर सकपका गई और वहाँ से हटकर दूसरी ओर जाने लगी। पर कुमार उसके सामने आकर खड़ा हो गया और हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ता हुआ बोला—अब भी ये बातें! यह तिरस्कार!! (मुस्कराकर) जिससे मिलने आई थीं, उससे अब न मिल सकोगी।

पिछली बात सुनकर वसन्तसेना घबड़ा गई। "हाय हाय! उन्हें क्या हुआ?" उसके मुँह से निकल पड़ा और शीघ्रता से वह वहाँ से जाने लगी। परन्तु कुमार ने बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया। वसन्तसेना ने झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया। इस पर क्रोधित होकर कुमार ने कहा—देख, आज तू मेरे वश में है। यदि तूने मेरी बात न मानी तो तेरी खैर नहीं।

निर्भय होकर वसंत सेना ने कहा—शरीर पर भले ही तेरा अधिकार हो, पर हृदय तो स्वतन्त्र है। इतना सुनते ही कुमार झल्ला गया उसने लपककर वसंतसेना को पकड़ लिया। अपने को विवश देखकर वह जोर-जोर से चिल्लाने लगी। इस पर कुमार ने उसे पटककर उसका गला घोंट दिया। वसंतसेना बेहोश हो गई। कुमार ने समझा कि उसका दम निकल गया है। इसलिए वह बहुत घबड़ाता हुआ वहाँ से चला गया और साथ में अपने साथियों को भी लेता गया।

दूसरे दिन उसने न्यायालय में अभियोग लगाया कि मैंने कल शाम को बाग में वसंतसेना की लाश पड़ी देखी थी। उसके शरीर पर किसी प्रकार के गहने नहीं थे। जान पड़ता है कि किसी ने उसके गहने लेने के लिए उसकी हत्या कर डाली है। इसी समय उसकी सिखाई हुई रम्भा भी आकर रोते हुए बोली—महाराज कल शाम से मेरी बेटी का पता नहीं है। हाय! वही मेरे बुढ़ापे का सहारा थी। कृपा करके उसका पता लगवा दिया जाय।

न्यायाधीश ने उसे सांत्वना देते हुए उससे सब हाल पूछा। उसने उत्तर दिया—महाराज पूरी बात तो मुझे मालूम नहीं है। मैं केवल इतना ही जानती हूँ कि चारुदत्त से मिलने के लिए वह बाग में गई थी। चलते समय उसने मुझसे यही कहा था।

कुमार ने इतना सुनते ही कहा—बस-बस, इसी ब्राह्मण ने उसकी हत्या की है। निर्धन तो वह है ही, उसने गहने के लालच में उसे मार डाला है। उसके घर की तलाशी ली जाय; यदि गहने वहाँ मिल जायँ तब तो साबित हो जायगा कि हत्यारा वही है।

न्यायाधीश की भी समझ में यह बात आ गई। उसने चारुदत्त को बुलाने, उसके घर की तलाशी लेने और वसंतसेना का पता लगाने के लिए कुछ आदमी भेजे। बेचारा चारुदत्त पकड़कर लाया गया। उसके

घर में वे गहने भी मिले जो वसंतसेना ने प्रेम के कारण उसके पुत्र को पहनाए थे। उन्हीं गहनों ने उसे चोर साबित कर दिया। रम्भा उन गहनों को पहचानकर रोती हुई बोली—हाय! मेरी बेटी! जान पड़ता है कि इन गहनों के लिए ही इस दुष्ट ने उसकी हत्या कर डाली है।

उधर वसंतसेना की लाश खोजनेवालों ने लौटकर कहा—महाराज हमने बाग का कोना-कोना खोज डाला, पर उस लड़की की लाश नहीं मिली। यह सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। पर कुमार ने बात बनाते हुए कहा—महाराज एकांत में होने के कारण उसे कोई पशु खा गया होगा या इसी चारुदत्त ने उसे कहीं छिपा दिया होगा। पर लाश चाहे मिले या न मिले, यह तो साफ़-ही-साफ़ बात है कि जिसके घर में वसंतसेना के गहने मिले हैं वही उसका हत्यारा हो सकता है।

राजा के सभी कर्मचारी कुमार से डरते थे। उसके इतना कहने पर किसी को बात काटने का साहस न हुआ। चारुदत्त और उसके मित्रों की बात किसी ने नहीं सुनी। न्यायाधीश ने उसे फाँसी का हुक्म दे दिया।

(५)

फाँसी का मैदान—

चारुदत्त अपना सर नीचे किए खड़ा है। उसके पास मित्र खड़े हैं। उसका अबोध बालक उसके पैरों से लिपट रहा है। सबकी आँखों से आँसू बह रहे हैं। सच्चरित्रता के कारण सारे नगर में चारुदत्त का बहुत मान था। उसको सब निरपराध समझते थे और जानते थे कि कुमार की दुष्टता के कारण ही इसे बेचारे को यह दंड मिल रहा है। कुमार भी वहीं पर खड़ा था। सब लोग उसे घूर-घूरकर देख रहे थे। परंतु कुमार मुस्करा रहा था और जल्लादों से बार-बार कहता था कि जल्दी से अपना काम पूरा करो। विवश होकर जल्लादों ने चारुदत्त को फाँसी

के तख्त पर खड़ा किया। उस समय उसके मुख पर पूर्ण शांति थी। पर उसका हृदय मातृहीन बालक के लिए व्याकुल था। इस करुण दृश्य को देखकर सभी रो पड़े।

सहसा भीड़ में से एक साधु वसंतसेना का हाथ पकड़े निकला। वसंतसेना शीघ्रता से बढ़कर चारुदत्त के पास पहुँची और उसे तख्त पर से खींचकर उससे लिपट गई। चारुदत्त के मुँह से केवल इतना ही निकला—ओ! वसंत!! सच!

उस साधु ने लपककर कुमार को पकड़ लिया और कहा—सज्जनो! हमारे भाग्य से वसंतसेना बच गई, पर उसको मारने की चेष्टा करनेवाला दुष्ट यही है। इसी ने उसका गला घोंट दिया था।

चारो ओर से "धिक्कार" "धिक्कार" की आवाजें आने लगीं। वसंतसेना को देखकर कुमार के प्राण सूख गए। अब जनता का रुख देखकर उसके हाथ-पैर फूल गए। वह गिड़गिड़ाकर साधु के चरणों पर गिर पड़ा। साधु ने मुस्कराकर कहा—अच्छा, चारुदत्त और वसंत-सेना से क्षमा माँग।

दोनों को कुमार की दीनता पर दया आ गई और उन्होंने उसे क्षमा कर दिया। दूसरे ही क्षण वसंतसेना चारुदत्त के पुत्र को छाती से लगाकर प्यार करने लगी। आज वह सत्य ही उसकी माता बन गई।

दुष्यन्त

[शकुन्तला]

एक समय भारतवर्ष में राजा दुष्यन्त राज करते थे। वे बड़े प्रतापी थे। धन, बल और वैभव में उस समय उनके समान दूसरा न था। एक दिन वे शिकार को गए और एक हिरन को देखकर उन्होंने अपना घोड़ा दौड़ाया। बहुत दूर जाकर ज्यो हीं राजा ने उसे मारने के लिए धनुष पर तीर चढ़ाया, त्यों ही एक तपस्वी ने पुकार कर कहा—राजन! यह मृग आश्रम का है। कृपा कर के इसे मत मारिये।

आश्रम का नाम सुन कर राजा ने बाण उतार लिया। इससे प्रसन्न होकर तपस्वी ने राजा की बड़ी प्रशंसा की और कहा—महाराज, यह कण्व मुनि का आश्रम है। वे तो यहाँ नहीं हैं, पर आप उनकी पालिता पुत्री शकुन्तला का आतिथ्य ग्रहण करें। राजा ने यह बात मान ली।

तपस्वी आश्रमवासियों से राजा दुष्यन्त के आने की बात कहने चला गया। उसके चले जाने के पश्चात राजा भी आश्रम की ओर चले। मार्ग में उन्हें तीन नवयुवतियाँ दिखाई दीं। उनमें से एक बहुत ही सुन्दर थी। उसका नाम शकुन्तला था। अन्य दोनों उसकी सखियाँ थीं। शकुन्तला हाथ में घड़ा लिये लताओं और बेलों को सींच रही थी। राजा दुष्यन्त उसे देखते ही मन्त्र-मुग्ध की भाँति खड़े रह गये। इसी समय

एक भौंरा शकुन्तला के मुख के पास आकर मँड़राने लगा। शकुन्तला ने भयभीत होकर अपनी सखियों से उसे हटाने को कहा। इस पर सखियों ने हँसी में उससे कहा—सखी, हम इसे न हटा सकेंगी। इस काम के लिए तो राजा दुष्यन्त को बुलाओ। राजा का काम प्रजा की रक्षा करना है। तब उनसे ही तुम्हें रक्षा के लिए कहना चाहिये।

उचित अवसर देख कर राजा दुष्यन्त प्रकट हो गये और कहने लगे—मैं ही दुष्यन्त हूँ। तीनो सखियाँ उन्हें देखकर चकित हो गईं; क्योंकि उन्हें अभी तक राजा के आश्रम में आने की बात ज्ञात नहीं हुई थी। फिर दोनो ने मुस्कुराकर शकुन्तला से कहा—सखी, इनका सत्कार करना चाहिये। राजा ने उत्तर दिया—मैं मधुर वचनों से ही बहुत सन्तुष्ट और सुखी हो गया। इसके पश्चात् सब वृक्ष की छाया में बैठ गये।

राजा के पूछने पर अनुसूया नाम की सखी ने शकुन्तला का परिचय देते हुये कहा—यह मेनका नाम की अप्सरा की विश्वामित्र से उत्पन्न पुत्री हैं। इसके माता-पिता इन्हें जङ्गल में छोड़ कर चले गये थे। उधर से जब मुनिवर कण्व निकले तब उन्होंने इन्हें उठा लिया और आश्रम में ले आए। यहाँ उन्होंने इसका लालन पालन किया।

यह बात सुन कर राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई, और उन्हें अपनी इच्छा पूरी होने की आशा होगई। बात यह थी कि वे शकुन्तला को देखते ही उस पर मुग्ध हो गये थे। इसलिये उससे विवाह करना चाहते थे। यदि वह कण्व मुनि की कन्या होती, तो विवाह में अड़चन पड़ती। पर वह विश्वामित्र की कन्या निकली। विश्वामित्र क्षत्रिय थे। अतः विवाह हो जाने में किसी को आपत्ति करने की आवश्यकता न थी।

इसी समय तपस्वियों के बुलाने पर सखियों के साथ शकुन्तला को जाना पड़ा। परन्तु जाते-जाते पैर में कुशा गड़ने का बहाना कर

वह राजा की ओर ललचाये नेत्रों से देखने लगी। इससे राजा को यह ज्ञात हो गया कि जिस प्रकार मुझे शकुन्तला से प्रेम है, उसी प्रकार वह भी मुझ से प्रेम करने लगी है। यही सोचते-सोचते वे अपने स्थान पर लौट आये। वहाँ उनका सखा माढव्य था। उसको उन्होंने समझाया कि यहाँ राक्षस ऋषियों के धर्म-कार्य में विघ्न डालते हैं। इसीलिये मैं यहाँ कुछ दिन रहना चाहता हूँ। तुम सबको साथ लेकर घर लौट जाओ। और माता जी तथा अपनी भाभियों को भी यही समझा देना। माढव्य को शिकार से चिढ़ थी। वह पेटू ब्राह्मण था। इसलिए शीघ्र ही सारी सेना लेकर वह राजधानी हस्तिनापुर को चल दिया।

(२)

दूसरे दिन राजा दुष्यन्त फिर आश्रम में गये उस समय शकुन्तला अपने दोनों सखियों के साथ एक घने वृक्ष की छाया में लेटी थी। सखियों को राजा के प्रति शकुन्तला के प्रेम का हाल मालूम हो गया था। इस समय उसी की बातें हो रही थीं। शकुन्तला राजा के वियोग में दुखी हो ठण्ढी सासें ले रही थी। सखियों ने उसका मन बहलाने के लिए कहा—हे सखी, राजा को पत्र लिखना चाहिये। शकुन्तला ने यह बात मान ली। उसकी सखियाँ कमल का एक कोमल पत्ता तोड़ लाईं शकुन्तला ने उस पर नखों से लिखा—

लाग्यो तोसों नेह रैन दिना कल ना परे।
काम तपावत देह अभिलाषा तुहि मिलन की॥

इसका आशय यह है कि मुझे तुम से प्रेम हो यया है, और मैं तुम्हारे वियोग में बहुत दुखी हूँ। उसने लिख कर यह सोरठा अपनी सखियों को सुनाया।

राजा दुष्यन्त छिप कर यह सब देख रहे थे। सोरठा सुन कर वे अधीर हो गये। वे अब अपने मन को रोक न सके, और शकुन्तला के सामने पहुँच कर बोले :—

केवल तोहिं तपावही, मदन अहा सुकुमारि ।
भस्म करत पै मो हियो, तू चित देख विचारि ॥

आशय यह है कि हे सुकुमारी तू मेरे वियोग में केवल दुखी ही है; पर मैं तो तेरी वियोग-अग्नि में भस्म हुआ जा रहा हूँ ।

राजा को सामने देख कर सब को बड़ी प्रसन्नता हुई । सखियों ने बढ़ कर राजा का स्वागत किया । उनको शकुन्तला के पास ही बैठाया । तब उसकी एक सखी ने राजा के मन की थाह लेने के लिए कहा—महाराज हमारी सखी के प्राण तो अब आप के हाथ में हैं । परन्तु आप का ध्यान तो अन्तःपुर में लगा है । अब आप ही कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे हमारी सखी के प्राण बच जायँ ।

दुष्यन्त सखी का व्यङ्ग समझ गए । बोले—मैं तो स्वयं इनके वश में हूँ । शकुन्तला यह सुन कर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई । अवसर देख कर उसकी दोनों सखियाँ बहाना करके हट गईं । अपने को अकेला पा कर जब शकुन्तला भी वहाँ से जाने लगी, तब राजा ने बड़े प्रेम से उसका हाथ पकड़ कर उसे रोक लिया ।

शीघ्र ही राजा से शकुन्तला का गन्धर्व विवाह होगया, और दुष्यन्त सुख से आश्रम में रहने लगे ।

कुछ दिन पश्चात् राजा हस्तिनापुर चले गये । चलते समय उन्होंने शकुन्तला को अपनी अँगूठी देकर कहा—प्रिये, इसमें जितने अक्षर हैं, उतने दिन में ही मैं आकर तुम्हें ले जाऊँगा । अँगूठी पर दुष्यन्त का नाम था और वे दो-तीन दिन में आश्रम को लौट आने का वचन दे कर अपने राज्य की ओर चले ।

(३)

राजा के जाते ही शकुन्तला को उनका विरह सताने लगा । वह राजा के ध्यान में इतना मग्न हो गई कि उसे कुछ सुध ही न रही । इसी समय दुर्वासा ऋषि आश्रम में आये । वे बड़े ही क्रोधी थे ।

शकुन्तला को उनका स्वागत करना चाहिये था। पर वह तो राजा के ध्यान में मग्न थी। इसलिए उसे मुनि के आने की बात मालूम ही नहीं हुई। मुनि ने समझा कि वह हमारा निरादर कर रही है। अतः उन्होंने शाप दिया कि तू जिसके ध्यान में मग्न है वही तुझे भूल जायगा।

शकुन्तला की सखियों ने जब मुनि का यह शाप सुना तो वे उनके पास जाकर पैर पकड़ कर रोने लगीं। तब ऋषि ने कहा—जिसके ध्यान में यह मग्न है उसे यह उसी की अँगूठी दिखायेगी तो उसे इसकी पुनः सुधि आ जायगी। सखियों को इससे कुछ धीरज हुआ कि महाराज अपनी अँगूठी देख कर शकुन्तला को पहचान लेंगे। इसीसे उन्होंने यह बात भी शकुन्तला से बताने की कोई आवश्यकता न समझी।

कुछ दिन पश्चात कण्व मुनि अपनी यात्रा से लौटकर आये। उनको योग बल से शकुन्तला और राजा दुष्यन्त के गन्धर्व विवाह का हाल ज्ञात हो गया था। दुष्यन्त को सब प्रकार शकुन्तला के योग्य देखकर उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ। उन्होंने दूसरे दिन अपनी स्नेह-पालिता पुत्री को दो तपस्वियों और गौतम नाम की एक स्त्री के साथ राजा दुष्यन्त के पास हस्तिनापुर भेज दिया। चलते समय शकुन्तला अपनी सखियों से, हिरन के बच्चों से, लता बेलों से लिपट-लिपटकर इतना रोई कि वयोवृद्ध मुनिवर कण्व के भी आँसू आगये। उसके क्रंदन से सारे आश्रम में शोक छा गया। हिरण के बच्चों के आँसू बहने लगे और वे उसको घेर कर खड़े हो गये। मानों उसे धीरज धरने की बात समझा रहे हों।

उधर दुर्वासा के शाप के कारण राजा को शकुन्तला का ध्यान न रहा। उनके दिन फिर से राजकाज के झंझटों में बीतने लगे। एक दिन वे अपने सखा माढव्य से बातें कर रहे थे। उसी समय उन्हें कण्व ऋषि के आश्रम से दो स्त्रियों और दो तपस्विनियों के आने का समाचार मिला। राजा ने उनका यथोचित आदर सत्कार करके

आने का कारण पूछा। इस पर तपस्विनियों ने कहा—महाराज हम आपकी विवाहिता शकुन्तला आपको सौंपने आई हैं। राजा शापवश सब भूले हुये थे; आश्चर्य से उन्होंने कहा—मुझे तो स्मरण नहीं आता है कि मैंने कभी इससे विवाह किया था।

शकुन्तला पर तो इतना सुनते ही वज्रपात हो गया। वह मन में बड़ी दुखी हुई। उसे देखकर एक तपस्विनी ने यह कहा—बेटी इस समय लाज का अवसर नहीं है। इतना कहकर उसका घूँघट हटा दिया। राजा उसका सुन्दर मुख भी देखकर उसे न पहचान सके। तब शकुन्तला ने उन्हें अँगूठी दिखाकर विश्वास करना चाहा। परन्तु उसके हाथ में तो अँगूठी थी ही नहीं। बात यह हुई कि मार्ग में 'शची' नामक तीर्थ स्थान में आचमन करते समय ही वह उसके हाथ से जल में गिर गई थी। अब तो शकुन्तला ने पिछली बातों और प्रतिज्ञाओं का स्मरण दिलाया। तो भी राजा को उसका विश्वास न हुआ, और उन्होंने शकुन्तला को ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया। उन दोनों तपस्वियों ने भी उसे अपने साथ चलने से रोका। और उसे "अभागी" कहकर वे दोनों शकुन्तला को वहीं छोड़कर स्वयं चले गये।

शकुन्तला यह अपमान देखकर बिलख-बिलख कर रोने लगी। इसी समय राजा दुष्यन्त के पुरोहित आ गये। उन्होंने सब बात सुन कर राजा से कहा—महाराज, ज्योतिष विद्या से पता लगा है कि आपका पुत्र चक्रवर्ती होगा। यह स्त्री गर्भवती है। यदि इसके पुत्र में चक्रवर्ती के लक्षण हों तो यह आपकी स्त्री है अन्यथा नहीं। पुत्र-जन्म के समय तक यह स्त्री मेरे यहाँ रहेगी।

राजा ने यह बात स्वीकार कर ली। पुरोहितजी शकुन्तला को लेकर अपने घर को चले। परन्तु ज्योंही वे महल से निकले त्योंही स्त्री-रूप में एक ज्योति आकाश से उतरकर शकुन्तला को अपने साथ उड़ा

ते गई । राजा दुष्यन्त को जब यह बात मालूम हुई तो उनका चित इस घटना से बहुत खिन्न हो गया। और वे गम्भीरता पूर्वक इस पर विचार करने लगे। परन्तु दुर्वासा मुनि के शाप के कारण कोई बात उन्हें याद ही न आई।

(४)

एक दिन दरबार में शहर का कोतवाल एक धीवर को पकड़कर लाया। उसके हाथ में वही अँगूठी थी जो राजा दुष्यन्त ने अपने विवाह का चिन्ह कहकर चलते समय शकुन्तला को दी थी। धीवर ने आकर कहा कि एक मछली के पेट में यह अँगूठी मुझे मिली थी। अँगूठी देखते ही राजा को शकुन्तला की याद आगई और वे रोने लगे। उन्होंने धीवर को छोड़ देने की आज्ञा दी और आप शकुन्तला की याद करने लगे। उसके प्रति अपने कठोर व्यवहार और उसके अपमान की बात सोचकर तो उनकी छाती फटने लगी। उसी समय से उन्होंने राजकाज छोड़ दिया। शकुन्तला के विरह में दिन रात पागल की तरह बकना ही उनका काम हो गया। किसी काम में उनका मन लगता ही न था। उन्होंने शकुन्तला का एक चित्र भी अपने आप ही बनाया। उसी से वे पागलों की तरह बातें किया करते थे। उनके सखा माढव्य को छोड़कर और दूसरे को उनके पास जाने की आज्ञा भी न थी।

एक दिन इन्द्र का भेजा हुआ मातलि नाम का एक सारथी उनके पास आया। उसने कहा—महाराज, देवराज इन्द्र का राक्षसों से संग्राम हो रहा है। उन्होंने आपसे सहायता माँगी है और अपना रथ भेजा है। आप इसी पर चढ़कर सुरराज की सहायता के लिए चलने की कृपा करें।

राजा दुष्यन्त वीर थे ही। उन्होंने सहर्ष युद्ध में जाने का निश्चय

कर लिया। और राजकाज का भार अपने मंत्री को सौंप, देवराज के रथ पर चढ़ देवताओं की सहायता को चल दिये।

स्वर्ग पहुँच कर उन्होंने बड़ी वीरता से युद्ध किया। असुरों ने उनका लोहा मान लिया। राजा की सहायता के कारण इन्द्र की विजय हुई। देवराज ने उनका बहुत आदर-सत्कार किया। और बड़े सम्मान के साथ उन्हें विदा किया। इन्द्र का सारथी मातलि ही उन्हें स्वर्ग से पृथ्वी पर पहुँचाने के लिए भेजा गया।

पृथ्वी पर आते हुये राजा दुष्यन्त बड़े आश्चर्य से चारों ओर की प्राकृतिक छटा देखकर प्रसन्न हो रहे थे। मार्ग में कश्यप मुनि का आश्रम पड़ता था। यहाँ मुनिवर अपनी पत्नी के साथ तपस्या करते थे। राजा दुष्यन्त की इच्छा उनका आश्रम देखने की हुई। उनकी उत्कट अभिलाषा देखकर मातलि ने रथ उसी स्थान पर उतार दिया।

राजा तपोवन का प्राकृतिक दृश्य देखकर बहुत प्रसन्न हो गये। रमणीक स्थान की सुन्दरता और शान्ति देखकर उनका चित्त प्रफुल्लित हो गया। वे बार-बार वहाँ बसने वाले ऋषि-मुनियों का भाग्य सराहने लगे। घूमते-घूमते वे एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ एक बालक सिंह के बच्चे के साथ खेल रहा था। 'वह बार-बार उसका मुँह चीर कर कहता—तू अपना मुँह खोल, मैं तेरे दाँत गिनूँगा।

एक तपस्विनी उस बालक को रोक रही थी। वह बालक को डराने के लिए कहती थी—इसे छोड़ दे, नहीं तो सिंहनी तेरे ऊपर झपट पड़ेगी।

बालक उसकी बात सुनकर मुस्करा देता और कहता—क्या मुझे सिंहनी का डर पड़ा है?

राजा दुष्यन्त का स्नेह इस बालक को देखकर उमड़ पड़ा। वे उस बालक को गोद में लेकर खिलाने के लिए बेचैन हो उठे। इसी समय उनसे तपस्विनी ने कहा—आप कृपा करके इस बालक के हाथ से

सिंह के बच्चे को छुड़ा दीजिये। राजा ने आगे बढ़कर उस बालक को "ऋषि कुमार" के नाम से सम्बोधित कर सिंह के बच्चे को छुड़ा दिया। तपस्विनी ने कहा—महाराज यह बालक ऋषिकुमार नहीं, पुरवन्शी है।

बालक के हाथ में चक्रवर्ती के लक्षण देखकर राजा दुष्यन्त को पहले ही कुछ शंका हुई थी। अब उसे पुरवंशी जानकर वह शंका और भी पुष्ट हो गई। फिर भी उन्होंने उसका परिचय जानने की इच्छा से धड़कते हुये हृदय को थाम कर धीरे से पूछा—इसकी माता किस भाग्यवान की पत्नी हैं।

तपस्विनी ने कुछ व्यंग्य से उत्तर दिया—जिसने अपनी पत्नी को बिना अपराध छोड़ दिया।

इसी समय दूसरी तपस्विनी ने एक मोर लाकर उस बालक को देते हुये कहा—यह देख शकुन्तलावण्य..........

बालक सहसा चौंक उठा और बोला—कहाँ है मेरी माता। यह बात सुनकर दोनों तपस्विनियाँ हँस पड़ीं और एक ने बड़े स्नेह से बालक को गोद में उठा लिया। पर सहसा वह चौंक कर बोली—कहाँ गिर पड़ा इसकी बाँह का कवच?

वह रक्षा-कवच पास ही पड़ा था। दुष्यन्त ने उसे उठा लिया। इस पर दोनों तपस्विनियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। एक ने कहा—इसकी रक्षा का कवच इसकी माता-पिता के अतिरिक्त जो कोई उठाता है, वह मर जाता है। परन्तु आपने इसे उठा लिया है। जान पड़ता है आप ही इसके पिता हैं। यह कहकर वह शकुन्तला को बुलाने के लिए शीघ्रता से चली गई।

दूसरे ही क्षण दीन, मलीन बेश में शकुन्तला आती दिखाई दी। दुष्यन्त ने अपनी पत्नी को पहचान कर कहा—प्रिये, मैंने तुम्हारे साथ बड़ी निष्ठुरता की। तुम मुझे क्षमा करो।

शकुन्तला ने "महराज" कहना चाहा, परन्तु उसका कंठ रुँध गया। उसके आँसुओं की धारा बहने लगी। राजा उसके पैरों पर गिर कर क्षमा माँगने लगे शकुन्तला ने उन्हें उठाकर कहा—प्राणनाथ, यह सब मेरे पापों का फल था। इससे आगे वह कुछ न कह सकी।

इसी समय मातलि ने आकर कहा—महाराज आज का दिन धन्य है। अब आप चलकर भगवान् कश्यप के दर्शन कीजिये।

मुनिवर के पास पहुँचकर राजा ने बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ उन्हें प्रणाम किया। भगवान् कश्यप ने उन्हें आशीर्वाद देते हुये कहा—तुम दोनों इन्द्र-शची के समान हो और तुम्हारा पुत्र जयंत के समान।

इसके पश्चात् राजा ने सारा वृत्तांत सुना कर पूछा—महाराज, इस अपराध का रहस्य क्या है? भगवान् कश्यप ने दुर्वासा ऋषि के शाप की बात कह सुनाई। इससे दुष्यन्त को बड़ा सन्तोष हुआ।

राजा अपने अपराध से मुक्त हो गये। शकुन्तला ने भी समझ लिया कि इसमें मेरे पति का कुछ दोष नहीं है। तब भगवान कश्यप ने फिर वरदान दिया— तुम्हारे पुत्र का नाम भरत है। यह चक्रवर्ती साम्राट होगा और इसी के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष होगा।

अन्त में प्रसन्नतापूर्वक उनसे बिदा होकर राजा दुष्यन्त पुत्र के साथ रथ में बैठकर हस्तिनापुर की ओर चले। महर्षि कश्यप ने उसी समय अपने एक शिष्य को मुनिवर कण्व के पास यह सुखद समाचार सुनाने के लिए भेज दिया।

रघु

[रघुवंश]

महाराज दिलीप अयोध्या के राजा थे। वे बड़े प्रतापशाली थे। उनकी रानी सुदक्षिणा बड़ी सुशीला और पतिव्रता थी। महाराज को और तो सभी सुख थे, परन्तु उनके कोई सन्तान न थी। इससे वे बहुत दुखी रहा करते थे। ज्यों-ज्यों उनकी अवस्था बढ़ती जाती थी, त्यों-त्यों वे अधिक चिन्तित होते जाते थे। अन्त में वे गुरुवर वशिष्ठ के पास गये और अपने दुख का कारण बताया। वशिष्ठजी ने उनसे कहा—काम-धेनु की पुत्री नन्दिनी हमारे यहाँ है। यदि तुम उसकी पूजा करो तो तुम्हारे पुत्र होगा। राजा ने यह बात सहर्ष मान ली और अपनी पति-व्रता स्त्री के साथ दिन-रात नन्दिनी की सेवा करने लगे।

एक दिन नन्दिनी हिमालय की सुन्दर और हरी भरी घाटी में चर रही थी। राजा भी उसके साथ थे, परन्तु वे प्राकृतिक सौंदर्य पर मुग्ध हो रहे थे। सहसा नन्दिनी का करुण-क्रन्दन सुनाई दिया। राजा का ध्यान टूटा। उन्होंने देखा कि एक सिंह ने गाय को दबोच लिया है। राजा ने सिंह को मारने के लिए तीर निकाला; परन्तु उनके हाथ ही धनुष बाण में चिपक गये। राजा ने विवश होकर नन्दिनी की ओर देखा। इसी समय सिंह ने कहा—महाराज, मैं गाय को तभी छोड़ सकता हूँ, जब तम स्वयं उसके स्थान पर मरने के लिए तैयार हो जाओ।

राजा को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई, वे प्राण देकर भी नन्दिनी को बचाना चाहते थे। उन्होंने शीघ्र ही अपने को सिंह के सामने डाल दिया और गाय को छोड़ देने की प्रार्थना की। दूसरे ही क्षण देखते क्या हैं कि उन पर फूल बरस रहे हैं। सिंह का कहीं पता ही नहीं है। नन्दिनी उनकी ओर स्नेह से देखती हुई मुस्करा रही है। राजा की समझ में कुछ न आया। इसी समय नंदिनी ने कहा—बेटा, यह तुम्हारी परीक्षा थी; तुम पास हुए। मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो।

राजा की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। हाथ जोड़ कर बोले—माता! पुत्र के सिवा आपकी कृपा से सब कुछ है।

नंदिनी ने कहा—जाओ, पुत्र ही होगा।

प्रसन्न चित्त दिलीप महाराज ने गुरुवर के आश्रम में आकर बिदा माँगी और रानी सुदक्षिणा को लेकर राजधानी लौट आए।

यथा समय रानी के बड़ा तेजस्वी पुत्र हुआ। राजा और रानी आनन्द के समुद्र में डूबने-उतराने लगे। प्रजा भी सुखी हो गई। साम्राज्य भर में आनन्द-ही-आनन्द छा गया। राजा ने बड़ी श्रद्धा और भक्ति से गुरु को बुलाया। उन्होने आकर बालक की कुण्डली बनाई और उसका नाम रघु रक्खा।

बालक रघु दिन-प्रति-दिन बढ़ने लगा। यज्ञोपवीत संस्कार होने के पश्चात् उसकी शिक्षा का यथोचित प्रबन्ध किया गया। बालक जन्म से ही कुशाग्र बुद्धि का था; शीघ्र ही पढ़-लिख गया। साथ ही घोड़े की सवारी, तीर और तलवार के खेल भी खेलता रहा। यों, क्रमशः उसकी मानसिक और शारीरिक शक्ति का विकास होने लगा।

जब रघु की अवस्था विवाह के योग्य हुई, तब एक सुन्दरी कन्या से उसका विवाह कर दिया गया। राजा इस समय तक बूढ़े हो चले थे। उन्होंने सोचा, रघु को युवराज बनाकर राज्य के झंझटों से छुट्टी

लेनी चाहिए। रानी भी यह बात सुन कर बड़ी प्रसन्न हुई और रघु का राज्याभिषेक कर दिया गया।

(२)

राज्य-कार्य से छुट्टी पाकर राजा ने यज्ञ करना चाहा। रघु को घोड़े का रक्षक नियुक्त किया गया। इससे उसको बड़ी प्रसन्नता हुई। घोड़े के साथ-साथ वे चारों तरफ घूमने लगे; वे मनाते थे कि किसी सुभट से सामना हो। परन्तु उस वीर के सामने किसी राजा का घोड़े को पकड़ने और उससे लोहा लेने का साहस ही न हुआ। यज्ञ निर्विघ्न पूरा हुआ। अब क्या था, चारों ओर धाक बैठ गई और वृद्ध महाराज दिलीप ने ६६ अश्वमेध यज्ञ कर डाले। अब तो इन्द्र को बड़ी चिन्ता हुई। उसने सोचा—यदि एक यज्ञ और पूरा हो जायगा तब तो मेरा पद ही छिन जायगा। यह सोच उसने कपट की ठानी और माया से घोड़ा हर ले चला। कुमार रघु और उसके अन्य सेनापति किंकर्तव्यविमूढ़ से एक दूसरे की ओर देखने लगे।

इसी समय वही नन्दिनी उनकी सहायता को आ पहुँची। उसकी कृपा से रघु को दिव्य दृष्टि मिली और उन्होंने इन्द्र को घोड़ा ले जाते हुए देखा। कुमार देवराज के पीछे चले और उन्हें ललकारा। सुरपति लौट पड़े। कुमार ने अनुनय-विनय करके घोड़ा लौटा लेना चाहा, परन्तु जब सुरपति इस पर राजी न हुए तब रघु ने उन्हें युद्ध के लिए ललकारा। घोर युद्ध होने लगा। देवराज कुमार की वीरता देख कर दाँतों तले उँगली दबाने लगे। उन्होंने कुमार की शूरता और वीरता की बड़ी सराहना की। अन्त में उन्होंने राजा दिलीप को सौ यज्ञों का फल दे दिया। यह सन्देश पाकर कुमार घर लौटे। वृद्ध महाराज सब वृतान्त सुन कर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने रघु को छाती से लगा लिया।

इस समय तक महाराज दिलीप बहुत बूढ़े हो गए थे। उन्होंने अब

वन में जाकर तपस्या करने का निश्चय किया। रानी ने भी उनकी बात मान ली और महाराज ने गुरुवर और बड़े-बड़े सामन्तों को बुला कर रघु को राज्य भार सौंप दिया और स्वयं वन को चले गये।

महाराज रघु के यश और बल की ख्यात चारों ओर फैलने लगी। राज्य की सुव्यवस्था देख कर सभी सुखी हो गये। उनके सुशासन में शेर और बकरी अपना स्वाभाविक बैर भूल कर एक ही घाट पानी पीते थे। धन-धान्य की भी कमी न थी, राज्य में कंचन बरसता था। उनके गुणों का गान चारण इस प्रकार करते थे मानो स्वयं सरस्वती ही उनका गुण गान कर रही हों।

(३)

एक बार शरद् ऋतु के आते ही राजा के मन में दिग्विजय करने का विचार उत्पन्न हुआ। तैयारियाँ होने लगीं। सेना के हृदय में नए उत्साह का संचार हुआ। महाराज ने राज्य का प्रबन्ध मंत्रियों को सौंप दिया, राजधानी की रक्षा के लिए सेना नियुक्त कर दी और गढ़ों और दुर्गों को सुरक्षित कर दिया। पश्चात्, राजा ने दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया। उनके साथ एक बड़ी सेना थी और प्रत्येक सैनिक का हृदय का हृदय अपने महाराज को देख कर सौ गुने उत्साह से भर रहा था।

पहले पूर्व की ओर धावा बोला गया। बङ्गाल का शासक कायर निकला। वह इतनी बड़ी सेना के आने का समाचार पाकर ही सन्धि की प्रार्थना करने लगा और उसने महाराज रघु की अधीनता स्वीकार कर ली। अब कलिङ्ग की बारी आई। यहाँ के राजा ने उनका सामना किया; पर शीघ्र ही उसकी सेना के पैर उखड़ गए। वहाँ से वह महेन्द्र आदि प्रदेशों को जीतता हुआ पश्चिम की ओर चला। अन्य स्थानों की विजय के उपरान्त उसने ईरान पर आक्रमण किया। वहाँ का यवन सुल्तान बहुत शक्तिशाली था। उसने महाराज रघु से लोहा लिया, बड़ा

भयङ्कर संग्राम हुआ। परन्तु अन्त में यवन-सेना पराजित हुई और उसे भागना पड़ा।

पश्चिम जीत कर वह उत्तर की ओर बढ़ा। पहले हूणों ने उसके मार्ग में बाधा डाली। इनको पराजित करके हिमालय के पर्वतीय राज्य पर उसने धावा बोल दिया। इन पर विजय प्राप्त करता हुआ वह कामरूप पहुँचा। यहाँ के राजा ने भी उसका लोहा मान लिया। यही उसकी अन्तिम विजय थी। अब उसकी दिग्विजय पूरी हुई और वह असंख्य धन-रत्न लेकर अपनी राजधानी अयोध्या लौटा। प्रजा ने बड़े समारोह से उसका स्वागत किया और सब लोग आनन्द से रहने लगे।

कुछ समय बाद उन्होंने विश्वजित नाम का यज्ञ करना आरम्भ किया। सारी प्रजा और सामन्त राजा के इशारे पर चलते थे। अतः शीघ्र ही यह यज्ञ पूरा हो गया। महाराज रघु को इससे बड़ा सुख और सन्तोष मिला। उन्होंने सारी प्रजा को बुला कर दिग्विजय के समय प्राप्त होनेवाला समस्त धन-रत्न दान कर दिया, यहाँ तक कि उसने अपने पास एक भी वस्त्राभूषण न रक्खा और केवल मिट्टी के बर्तनों को छोड़ कर सब कुछ दूसरों को दे डाला। ऐसे दानी और वीर राजा को पाकर प्रजा भी निहाल हो गई।

(४)

वरतनु नामक ऋषि का कौत्स नाम का एक शिष्य था। उसे चौदह करोड़ स्वर्णमुद्रा गुरुदक्षिणा देने के लिए चाहिए थीं। महाराज रघु का नाम और यश चारों ओर फैल ही चुका था। बस वह उन्हीं के पास चल दिया। यहाँ आकर उसने राजा को बड़ी निर्धन दशा में देखा और सोचने लगा, कहाँ तो चौदह करोड़ स्वर्णमुद्रा और कहाँ राजा का यह निर्धन वेश! यहाँ काम न बनेगा। यह सोच कर वह चलने लगा। इतने में राजा उसके पास आये। उन्होंने उसका आदर-सम्मान करके

और मुनिवर का कुशल-समाचार पूछ कर कहा—विप्रवर क्या सेवा करूँ ?

कौत्स यों तो पहले ही निराश हो चुका था, परन्तु राजा का विशेष आग्रह देख कर कहा—महाराज, चौदह करोड़ स्वर्णमुद्रा चाहिएँ।

राजा यह सुन कर मुस्कराने लगे। बोले—विप्रवर, आप यज्ञशाला में ठहरें, मैं इस धन का प्रबन्ध करता हूँ।

यह कहकर उन्होंने कुबेर पर चढ़ाई करने का निश्चय किया और मंत्री को बुलवाया। इसी समय कोषाध्यक्ष ने आकर सूचना दी कि महाराज ! कोश में स्वर्ण की वर्षा होरही है। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने जाकर देखा तो सत्य ही अपने सामने स्वर्ण-राशि पड़ी पाई। उन्होंने कौत्स को बुला कर सब स्वर्ण ले जाने को कहा। ब्राह्मण भी सच्चा और निर्मोही था। उसने कहा—महाराज, मुझे तो केवल चौदह करोड़ स्वर्ण-मुद्रा चाहिए। यह सब स्वर्ण लेकर मैं क्या करूँगा। परन्तु राजा अपनी बात पर डटे रहे। अन्त में कौत्स ने सब सोना लेना स्वीकार कर लिया और प्रसन्न होकर राजा को वर दिया कि महाराज, तुम्हारे, तुम्हारे ही समान पुत्र होगा।

ऋषि का आशीर्वाद सफल हुआ। राजा के यथासमय एक सुन्दर पुत्र हुआ। उसका नाम अज रक्खा गया। अज भी पिता की भाँति ही वीर और बुद्धिमान था। युवावस्था के आरम्भ में ही उसने बड़ी वीरता दिखा कर विदर्भ देश के राजा की भगिनी इन्दुमती से विवाह किया। महाराज रघु को पुत्र की इस सफलता से बड़ा हर्ष हुआ और वधू के सुन्दर मुख को देख कर महारानी फूली नहीं समाई। अब उन्होंने शुभ दिन और शुभ घड़ी में पुत्र का राज्याभिषेक किया और स्वयं पत्नी को लेकर वन में तपस्या करने चले गये।

हरिश्चन्द्र

(सत्य हरिश्चन्द्र नाटक)

सहत विविध दुख, मरि मिटत, भोगत लाखन सोग।
पै निज सत्व न छाँड़हीं, जे जग साँचे लोग॥
वरु सूरज पच्छिम उगै, बिन्ध्य तिरै जल माँहि।
सत्य-वीर-जन पै कबहुँ, निज बच छाँड़त नाहि॥

अपनी बात पर डटे रहना, जो कह दिया वही करना, आसान नहीं होता। छोटी-छोटी बातें कहकर हम मुकर जाते हैं। इसका कारण क्या है? यही कि हम दुख से घबड़ाते हैं। हम जानते हैं कि यदि हम अपने प्रण का पालन करते रहेंगे तो हमें बहुत से कष्ट उठाने पड़ेंगे; दूसरे हमारी हँसी उड़ाकर हमें मूर्ख बनावेंगे। परन्तु ये सब बातें साधारण मनुष्यों के लिए हैं। जो महापुरुष हैं, उन्हें इन बातों की चिंता नहीं रहती। चाहे जितने कष्टों का सामना उन्हें करना पड़े, वे तनिक भी विचलित नहीं होते, हँसते-हँसते लोहे के चने चबाने के लिए वे तैयार रहते हैं। ऐसे ही एक महापुरुष महाराज हरिश्चन्द्र थे। वे इक्ष्वाकु वंशीय राजा त्रिशंकु के पुत्र थे। पिता की स्वर्गयात्रा के पश्चात् वे अयोध्या के राजा हुए। वे बड़े सत्यवादी थे। उन्होंने प्रण किया था—

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्योहार।
पै दृढ़ व्रत हरिश्चन्द्र को, टरै न सत्य विचार॥

राजा हरिश्चन्द्र अपनी इस प्रतिज्ञा का आजन्म पालन करते रहे। अपनी प्रजा का वे पुत्र की तरह पालन करते थे। इसी से उनके राज्य में चारों ओर शान्ति थी, घी-दूध की नदियाँ बहती थीं। प्रजा को सुखी देखकर राजा को बड़ा सन्तोष होता था। उनकी रानी शैब्या भी पतिव्रता और सुन्दर गुणवाली स्त्री थी। उनके एक पुत्र था। उसका नाम रोहिताश्व था। अपने इस कलेजे के टुकड़े को देखकर राजा और रानी फूले न समाते थे।

राजा हरिश्चन्द्र की कीर्ति, धीरे-धीरे चारों ओर फैलने लगी। जो सज्जन थे, उन्होंने राजा की बड़ाई की और दूसरों के सामने उनका उदाहरण रखने लगे; परन्तु जो ओछी प्रकृति के थे, उनके कलेजे में राजा की बड़ाई तीर की तरह चुभ गई। प्रसन्नता के बदले उन्हें ईर्ष्या हुई। राजा इन्द्र ऐसे ही व्यक्ति थे। नारदजी के मुँह से राजा हरिश्चन्द्र के विद्यानुराग, उपकारप्रियता, क्षमा, धैर्य, निरभिमानता, संतोष आदि गुणों का उल्लेख पत्थर-सा हृदय करके उन्होंने सुना। नारद जी उनके हृदय का भाव जान गए। उन्होंने इंद्र को समझाया, कहा—ईश्वर ने आपको बड़ा किया है तो आपको दूसरों की उन्नति और उत्तमता पर संतोष करना चाहिए। परन्तु इंद्र ने उनकी शिक्षा पर कुछ ध्यान न दिया। नारद जी मन ही मन अप्रसन्न होकर वहाँ से लौट आए।

इंद्र अब महाराज हरिश्चंद्र को नीचा दिखाने की बात सोचने लगे। इसी समय विश्वामित्र उनके यहाँ पधारे। वे बड़े क्रोधी जीव थे। उन्हें देखकर इंद्र को बड़ी प्रसन्नता हुई। नमक-मिर्च लगाकर उन्होंने सब बातें विश्वामित्र से कहीं। इन महाशय का राजा हरिश्चंद्र के पुरोहित वशिष्ठजी से पुराना बैर था। अतः गुरु का बदला शिष्य से लेने और राजा हरिश्चंद्र को "तेजोभ्रष्ट" करने का उन्होंने प्रण कर लिया।

(२)

राजा हरिश्चन्द्र ने एक दिन स्वप्न में अपना राज्य एक ब्राह्मण को दान दे दिया। यह ब्राह्मण विश्वामित्र ही थे। राजा इनको जानते नहीं थे और स्वप्न की बातें सच्ची भी नहीं होतीं। परन्तु हरिश्चन्द्र अपनी बात के इतने पक्के थे कि दूसरे दिन ही उन्होंने अपने राज्य में ढिंढोरा पिटवा दिया—आज से यह राज्य 'अज्ञात-नाम-गोत्र' ब्राह्मण का है और मैं सेवक की भाँति सब राज-काज करूँगा।

यों, विश्वामित्र को पहली बार मुँह की खानी पड़ी। उन्होंने सोचा था कि राजा स्वप्न की बात को सत्य न समझेगा। परंतु राजा ने उसे सत्य समझकर उस पर अमल करना भी शुरू कर दिया। इस पर विश्वामित्र बड़े झल्लाए और आकर राजा को, व्यर्थ ही, बुरा-भला कहने लगे। परंतु हरिश्चंद्र ने जरा भी क्रोध न किया और अपना सारा राज्य उन्हें सौंप दिया। अपनी मातृभूमि से अलग होते हुए उनकी आँखों में आँसू आगए, परन्तु बड़े धैर्य से मातृभूमि से क्षमा माँगते हुए उन्होंने कहा—

> वसुधे ! तुम बहु सुख कियो, मम पुरुषन की होय।
> धरमबद्ध हरिचंद्र को क्षमहु सु पर-बस जोय॥

इस पर भी विश्वामित्र को संतोष न हुआ। उन्होंने दूसरी समस्या राजा के सामने रक्खी। बोले—इतने बड़े राज्य की दक्षिणा कम-से-कम एक हजार स्वर्णमुद्रा तो दे।

राज्य के साथ राजा अपना सारा खजाना भी दानकर चुके थे। अब स्वर्णमुद्रा कहाँ से देते ? विश्वामित्र की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। मन-ही-मन वे सोचने लगे कि अब मैं इसे सत्यभ्रष्ट कर सकूँगा। परन्तु धन्य हरिश्चंद्र ! उन्होंने अभिमान से हाथ उठाकर फिर प्रतिज्ञा की—

बेचि देह - दारा - सुअन, होइ दासहू मन्द ।
रखिहै निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचंद ॥

"शरीर, स्त्री और अपने पुत्र को ही क्यों न वेचना पड़े, नीच का दास ही क्यों न बनना पड़े, पर मैं अपने बचन को सत्य प्रमाणित करके ही छोड़ूँगा।"

विश्वामित्र की यह दूसरी पराजय थी।

(३)

भाग्य बड़ा बली है। जो हरिश्चंद्र कल चक्रवर्ती राजा थे आज निर्धन हो गए हैं। जो राजा हरिश्चंद्र कल दासों के क्रय-विक्रय के लिए दूसरों को रोकते थे, वे आज स्वयं दूसरों के दास होना चाहते हैं। राज्य छूटा, जन्मभूमि छूटी, फिर भी शांति नहीं। साधारण व्यक्ति इतने कष्टों की कल्पना भी नहीं कर सकता। परंतु हरिश्चंद्र के माथे पर शिकन भी न पड़ी। अपनी सुकुमार रानी और फूल-से कोमल कुमार रोहिताश्व को लेकर बिकने के लिए वे काशी पहुँचे। सिर पर तृण रक्खे हुए वे काशी के बाजार में घूम रहे हैं। साथ में रानी है जो यह कहती हुई बाजार में फिर रही है कि कोई महात्मा कृपा करके हमको मोल ले ले तो बड़ा उपकार हो। उसकी देखा-देखी अबोध बालक रोहिताश्व भी अपनी तोतली बोली में कह उठता है—अमको बी कोई मोल ले तो बला उपकाल हो।

कितना करुण दृश्य है! पुत्र की जिन तोतली बातों के लिए माता-पिता तरसते हैं, रोहिताश्व की उन्हीं बातों को सुनकर रानी का हृदय फटा जा रहा है, कलेजा मुँह को आता है, वह चीख उठी—आह, बेटा! मेरे जीते जी तू ऐसे कातर वचन क्यों कहता है? यह हृदय-विदारक दृश्य देखकर हरिश्चंद्र की आँखों में आँसू तो अवश्य आ गए, परन्तु उन्होंने अपना धैर्य नहीं छोड़ा।

रानी को एक ब्राह्मण ने खरीद लिया। रानी सोना लेकर राजा के कपड़े में बाँधने लगी और रोकर उसने राजा से कहा—नाथ, मेरे अपराधों को क्षमा करना। जिस स्त्री का एक दिन उन्होंने हाथ पकड़ा था और जिसे अपनी अर्द्धांगिनी बनाया था, उसी को आज अपने सामने दूसरे की दासी बनते देखकर भी हरिश्चंद्र अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहे और बड़े संतोष के साथ शिक्षा दी—प्रिये! सर्वभाव से उपाध्याय को प्रसन्न रखना और सेवा करना। उनकी आँख का तारा एक मात्र पुत्र रोहिताश्व माँ का आँचल पकड़ कर उनसे पूछता है—पिताजी माँ कहाँ जाती है? इस प्रश्न का राजा के पास क्या उत्तर था? फिर भी उन्होंने धैर्य धारण किया। इसी समय ब्राह्मण देवता ने देर होते देख रोहिताश्व को ढकेल दिया। रोता हुआ बालक क्रोध में ब्राह्मण की ओर देखकर, सकरुण दृष्टि से माता-पिता की ओर देखता है। पर हरिश्चंद्र उसका मुँह चूमकर केवल इतना ही कहते हैं—बेटा, ब्राह्मण का क्रोध तो सभी दशा में सहना चाहिए।

प्राणों से भी प्यारे स्त्री-पुत्र को विदा देकर हरिश्चंद्र आँसू भी न पोंछ पाए थे कि विश्वामित्र आगए। राजा ने पैरों पर गिरकर आधी दक्षिणा उनके सामने रख दी। इस पर विश्वामित्र का क्रोध और भी भड़क गया; बोले—शीघ्र पूरी दक्षिणा दे नहीं तो शाप देता हूँ। राजा करुण दृष्टि से उनकी ओर देखने लगे।

इसी समय एक चौधरी—चाण्डाल—आया। वह राजा को खरीदने के लिए तैयार हो गया। राजा जाति के क्षत्रिय थे। चांडाल के हाथ बिकना, एक प्रकार से, अपने धर्म से पतित होना था। अतः उन्होंने बड़े विनीत शब्दों में विश्वामित्र से प्रार्थना की—महाराज! मैं आपकी सभी आज्ञाएँ मानने को तैयार हूँ, आपका जन्म भर दास रहूँगा, पर मुझे चांडाल का दास होने से बचाइए। विश्वामित्र मन-

ही मन प्रसन्न हो गए, समझे अब तो यह मेरे वश में है ही और प्रकट रूप से उन्होंने पूछा—जो मैं कहूँगा, मानेगा ?

राजा ने उत्तर दिया—हाँ। केवल मुझे चांडाल का दास होने से बचाइए।

पर मेरी आज्ञा है कि तू इसी चांडाल के हाथ बिक जा—विश्वामित्र ने कठोर मुद्रा से कहा।

हरिश्चंद्र चांडाल के हाथ बिक गए। विश्वामित्र की इस बार भी हार हुई। राजा ने उनकी दक्षिणा चुकाकर हर्ष और गर्व से कहा—

ऋण छूट्यो, पूर्यो वचन, द्विजहु न दीनो शाप।
सत्य पालि चंडाल हू, होइ आजु मोहि दाप॥

संसार के इतिहास में कोई भी ऐसा उदाहरण है जहाँ एक चक्रवर्ती राजा ने अपनी प्राणप्रिय स्त्री, अपना एक मात्र पुत्र और स्वयं अपने आपको, चांडाल के हाथ बेचकर इस प्रकार "दाप"—अभिमान—किया हो !

(४)

चौधरी ने हरिश्चन्द्र को श्मशान पर काम करने भेजा। वहाँ उन्हें यह काम सौंपा गया कि जो व्यक्ति मुर्दा फूँकने आवें, उनसे राजा को एक टका या मुर्दे का आधा कफन ले लेना चाहिए। साथ ही उन्हें यह भी आज्ञा हुई कि जो यह कर न दे सके उसे मुर्दा न फूँकने दिया जाय।

कितनी भीषण परीक्षा थी ! अपने आत्मीयजन या सम्बन्धी की मृत्यु से रोते-बिलखते जो व्यक्ति आते, उनके आगे चक्रवर्ती राजा को हाथ फैलाना पड़ता। यही नहीं, जो निर्धन धनाभाव के कारण पैसा या कफन न दे पाते थे, उन्हें मुर्दा फूँकने से रोकना भी पड़ता। राजा

हरिश्चन्द्र की यह अन्तिम परीक्षा थी। इसमें भी विश्वामित्र का ही हाथ था। सत्य और वचन-पालन की परीक्षा में वे उत्तीर्ण हो चुके थे। अब उनके कर्तव्य और धैर्य की परीक्षा थी। एकान्त स्थान में, भयङ्कर श्मशान में, अन्धकारपूर्ण रजनी में और चिलचिलाती धूप में, वे अकेले घूमा करते है। उन्हें यह भी ज्ञात नहीं है कि उनकी स्त्री या उनके पुत्र पर क्या बीत रही है; जिस प्रजा को वे प्राण समान चाहते थे, उसकी क्या दशा है। इस समय यदि उन्हें किसी प्रकार का सन्तोष है तो यही कि—

> बेचि देह दारा सुअन, होइ दासहु मन्द।
> राख्यो निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचन्द॥

श्मशान के भयङ्कर दृश्य देख कर बड़े-बड़े वीरों की छाती दहल जाती है। परन्तु हरिश्चन्द्र का इस ओर ध्यान भी नहीं जाता। चारों ओर धधकती हुई चिताओं को देख कर वे कह उठते हैं—शरीर भी कैसी निस्सार वस्तु है। मांस के लिए लड़ते हुए पशुओं और पक्षियों को देख कर उनके मुँह से निकल पड़ता है—शव! तुम धन्य हो कि इन पशुओं के काम आते हो। इसी प्रकार के अनेकानेक भयङ्कर और वीभत्स दृश्यों को देख कर उनके मन में दार्शनिक विचारों का उदय होता है। जीवन के उत्थान-पतन, दुख-सुख, मोह-घृणा आदि रहस्यों पर विचार करते-करते वे एक बार घबड़ा उठते हैं और चाहते हैं कि आत्महत्या करके इस नैराश्यपूर्ण जीवन से छुटकारा पा लें। परन्तु दूसरे ही क्षण उन्हें अपने कर्तव्य का ज्ञान हो आता है कि जब हम दूसरे के दास हैं तो इस शरीर पर हमारा क्या अधिकार? इस कर्तव्य का ज्ञान होने पर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती है और आनन्दातिरेक के कारण उनके दुख से भगवती चण्डी की स्तुति निकल पड़ती है। भगवती उन पर प्रसन्न हो जाती हैं और उनसे वर माँगने को कहती हैं। कोई साधारण व्यक्ति होता तो अपने ही लाभ के लिए कोई वर माँग लेता; परन्तु हरिश्चन्द्र

के मुँह से यही निकला कि मेरे स्वामी का कल्याण करो। इस समय स्वामी के कल्याण के लिए ही प्रयत्नशील रहना उनका कर्तव्य है। कुछ समय पश्चात् एक योगिराज आते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं कि राजन! मैं सब सिद्धियाँ सिद्ध कर चुका हूँ; पर जब उनका प्रयोग करता हूँ तो विघ्न पड़ते हैं। आप इन विघ्नों को रोक दीजिए। राजा ने आज्ञा मान ली और विघ्नों को सिद्धि में बाधा डालने से रोक दिया। योगिराज ने इस पर प्रसन्न होकर राजा को बहुत-सा सोना देते हुए कहा—राजन् इस सोने से तुम ऋण से मुक्त हो सकते हो। पर हरिश्चन्द्र ने विनीत स्वर में कहा—महाराज यह मेरे दास-धर्म के विरुद्ध है। आप यह सोना मेरे स्वामी को दें। योगिराज यह सुन कर चकित-से रह गए।

अन्त में, प्रलोभन देकर उनको व्रत से डिगाने के लिए तीनों महा विद्याएँ आईं। इन्हें साधने के लिए विश्वामित्र ने बड़ा श्रम किया था। इन देवियों ने भी राजा से प्रार्थना की कि हमें ग्रहण कीजिए। परन्तु राजा ने सधन्यवाद उनसे क्षमा प्रार्थना करके यही कहा—आप विश्वामित्र के ही वश में रहें। इन्हीं विश्वामित्र के कारण राजा इस दशा को पहुँच गए थे; फिर भी उनके हृदय में मुनि के प्रति किसी प्रकार भी विरोध या वैर का भाव नहीं है। कितना महान् त्याग है!

(५)

रानी शैव्या ब्राह्मण की दासी बनी थी। उसका पुत्र रोहिताश्व ब्राह्मण की पूजा के लिए वाटिका में फूल लेने जाया करता था। एक दिन एक सर्प ने फूल तोड़ते समय कुमार को डस लिया। बेचारे बालक की वहीं मृत्यु हो गई। जब रानी को ज्ञात हुआ कि उसका एक मात्र साहारा भी जाता रहा तो उस पर दुख का पहाड़ टूट पड़ा। बेचारी रोती पीटती बालक को लेकर श्मशान पहुँची। दूर से स्त्री का करुण-क्रन्दन और

विलाप सुनकर और यह जान कर कि इस असहाय स्त्री का एक मात्र पुत्र मर गया है, राजा का हृदय भर आया और वे रह-रह कर यह सोचने लगे कि हमको भी भगवन ने क्या ही निर्दय और बीभत्स धर्म सौंपा है। इससे भी वस्त्र माँगना पड़ेगा ?

पास आने पर विलाप करती हुई रानी के मुँह से—"हाय मेरी बोलती चिड़िया कहाँ उड़ गई। हाय ! मेरी अन्धी की लकड़ी कौन छीन ले गया। विश्वामित्र ! आज तुम्हारे सब मनोरथ पूरे हुए। हाय !!"—सुन कर तथा उसे और मृत पुत्र रोहिताश्व को पहचानकर राजा स्वयं भी रोने लगे। साधारण दुख पड़ने पर ही मनुष्य के हाथ-पैर फूल जाते हैं; परन्तु एक मात्र पुत्र का वियोग होने पर भी हरिश्चन्द्र अपने कर्तव्य को नहीं भूले। दारुण दुख के आदेश में जब रानी शैव्या आत्महत्या के लिए तैयार हुई तो उन्होंने अविरल अश्रुधारा रोक कर बड़े धैर्य से रानी को शिक्षा दी।

तनहिं बेचि दासी कहवाई। मरति स्वामि आयसु बिनु पाई ॥
करु न अधर्म सोच जिय माँहीं। पराधीन सपने सुख नाहीं ॥

रानी सम्हल गई और चौंककर चारों ओर देखने लगी। उसे भी अपने कर्तव्य का ध्यान हो आया। बड़े धैर्य के साथ उसने पुत्र की चिता बनाई। हरिश्चन्द्र यह सब देखते और सहते रहे। जब रानी पुत्र को चिता पर रखने लगी, तब उन्होंने सामने आकर, आँसू रोक कर, शैव्या से कहा—महाभागे ! श्मशान-पति की आज्ञा है कि आधा कफन दिये बिना कोई मुर्दा फूँकने न पावे। सो तुम भी पहले हमें कपड़ा दे लो, तब क्रिया करो।

रानी ने पति को पहचाना। उसके आँसुओं का बाँध टूट गया; धैर्य छूट गया; विलख कर बोली—हा आर्य पुत्र ! तुम्हारा प्यारा रोहिताश्व देखो, अब अनाथ की भाँति श्मशान पर पड़ा है। राजा ने सुना; परन्तु बड़े धीरज के साथ कहा—प्रिये ! यह रोने का समय नहीं

है। चलो, कलेजे पर पत्थर रख कर क्रिया करो और आधा कम्बल हमको दो।

रानी फिर रो पड़ी; बोली—नाथ! अपना आँचल फाड़ कर इसे लपेट लाई हूँ; उसमें से भी आधा दे दूँगी तो यह खुला रह जायगा। हाय! चक्रवर्ती के पुत्र को आज कफन भी नहीं मिला।

रोते हुए हृदय पर हाथ रख कर राजा ने उत्तर दिया—प्रिये! तुम अपनी हो, यह समझ कर मैं स्वामी की आज्ञा कैसे टाल सकता हूँ?

पतिव्रता रानी ने पति की आज्ञा मान कर ज्यों ही कफन फाड़ने को हाथ बढ़ाया, त्यों ही पृथ्वी हिलने लगी, तोप छूटने का सा शब्द और बिजली का उजाला हुआ। बाजे बजने लगे और "धन्य-धन्य", "जय-जय" की ध्वनि हुई। फूल बरसने लगे। सत्य रुपी भगवान ने प्रकट होकर राजा का हाथ पकड़ लिया और "सत्य धर्म की परमावधि हो गई" कह कर वे प्रेमावेश में रो पड़े। इन्द्र, विश्वामित्र ने भी प्रकट होकर उन्हें आशीर्वाद दिया। रोहिताश्व को भगवान ने जीवित कर दिया। अयोध्या का राज्य भी हरिश्चन्द्र को फिर से मिल गया और वे सुख से रहने लगे।